

निज़ाम की जेल में

क्षितीश वेदालंकार



लेखक
श्रीतीक्ष्ण वेदालंकार

द्वि वर्षे पब्लिकेशंस

मूल्य- 20 रु०

निजाम की जेल में

क्षितीश वेदालंकार

प्रथम संस्करण : मई, 1986

प्रकाशक—

वि. बल्हं पब्लिकेशंस
807/95, नेहरू प्लेस
नई दिल्ली, 110019

मुद्रक—

एस० नारायण सिंह एण्ड सन्स,
7117/18, पहाड़ी खीरज, दिल्ली

आवरण — तूलिकी

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

1. आर्यसमाज अनारकली, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-1
2. सार्वदेशिक समा, आसफ़अली रोड, नई दिल्ली-2
3. गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-6
4. आर्य प्रकाशन, 814-कुडवालयन, अजमेरी गेट, दिल्ली-6

समर्पण

हृदयाबाद के भायें सत्याग्रह में बलिदान हुए उन
हुतात्माओं को और उन सत्याग्रहियों को
जिनके त्याग और तपस्या ने सामन्तशाही की
समाप्ति का बीर राष्ट्र की स्वतन्त्रता
का मार्ग प्रशस्त किया ।

अपनी बात

कहावत है कि बारह वर्ष के बाढ़ धूरे के भी दिन फिर जाते हैं। पर हैदराबाद सत्याग्रह को हुए बारह के भी चौगुने वर्ष हो गए। लगभग आधी सदी बीत जाने के बाद भारत सरकार की नींद खुली। उसने हैदराबाद में हुए आर्य सत्याग्रह के महत्व को समझा और सितम्बर 1985 में घोषणा की कि उस सत्याग्रह में भाग लेने वालों को भी स्वतंत्रता सेनानी सम्मान पेंशन का पात्र माना जाएगा।

गत आधी सदी में देश में कितना परिवर्तन आया है ? अब तो भारत को स्वतंत्रता प्राप्त किए भी 39 साल ही रहे हैं। जिस सरकार ने केरल के मोपला विद्रोहियों तक को स्वतंत्रता सेनानी मान लिया, वह आर्य सत्याग्रहियों के केस पर इतने वर्षों तक विचार ही करती रही। आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक और महाराष्ट्र की राज्य सरकारों ने अपने-अपने राज्य के आर्य सत्याग्रहियों को कब से स्वतंत्रता सेनानी मान लिया था। महाराष्ट्र की सरकार ने तो राज्य के मुख्यालयों में जो शहीद स्मारक बनाए उनमें आर्य सत्याग्रहियों के नाम अंकित करके अपनी न्यायबुद्धि का परिचय दिया। पर केन्द्रीय सरकार नहीं हिली।

आखिर केन्द्रीय सरकार हिली। उसने हैदराबाद के सत्याग्रह के सही स्वरूप को समझा, उसे भारत के स्वातंत्र्य-संघर्ष का महत्वपूर्ण अंग माना और आर्य सत्याग्रहियों को सन् 1980 के अगस्त मास से पेंशन पाने का अधिकार दिया।

गलती का परिमार्जन तो हुआ। पर कब ? सन् 1985 में—जब 25 हजार सत्याग्रहियों में से 90 प्रतिशत लोग मर-खप चुके। उनमें से कितनों ने अपना शेष जीवन किस अभावग्रस्तता में बिताया होगा, यह कौन जाने। यों आर्यसमाज ने आज तक राष्ट्र के प्रति अपनी कुर्बानियों का कभी कोई मुआवजा नहीं मांगा। वह उसकी घुट्टी में ही नहीं है। ऋषि दयानन्द के अनुयायियों ने तो सदा अपने तन-मन-धन के लिए इसी मंत्र का जप किया है—‘इदं राष्ट्राय स्वाहा, इदन्न मम’—यह सब कुछ राष्ट्र के लिए समर्पित है, यह मेरे लिए नहीं है।

निजाम की जेल से छूटने के बाद सन् 19२9 में अपनी छात्रावस्था में ही एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी थी—‘आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति।’ उस पुस्तिका

में अपने जत्थे की आपबीती का वर्णन किया था। उसकी भूमिका उस समय गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य स्वामी अमरदेव जी ने लिखी थी और उसमें गुरुकुल के अन्य स्नातकों के योग का उल्लेख करके पुस्तक के नाम को सार्थकता प्रदान की थी।

इतने अर्स से अप्रासंगिक बनी यह घटना केन्द्रीय सरकार द्वारा आर्य सत्याग्रहियों को स्वतंत्रता सेनानी मानने की घोषणा के साथ पुनः प्रासंगिक हो उठी। उस पुस्तिका की एक प्रति मेरे निजी पुस्तकालय में अकस्मात् मिल गई। जब 'आर्य जगत्' में लेखमाला के रूप में वह छपनी शुरू हुई तो पाठकों का आग्रह हुआ कि यह तो पुस्तक रूप में आनी चाहिए।

पहले अपने जत्थे की आपबीती के सिवाय और कुछ लिखने का इरादा नहीं था। ('बिखरी यादें' वाला अध्याय नया लिखा गया है।) पर फिर लगा कि तीन-चार पीढ़ियां बीत जाने के बाद आज किसे ध्यान है कि वह सत्याग्रह क्यों हुआ था? उन समय की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति क्या थी? आर्यसमाज ने किस दृढ़ता के साथ उस खुनौती का सामना किया था? भारतीय संघ में उस मुस्लिम रियासत के पूर्ण विलय के लिए आर्यसमाज ने क्या भूमिका अदा की थी और भारतीय स्वातंत्र्य का वह गौरवपूर्ण अध्याय किस प्रकार अपने लहू से लिखा गया था? आज की पीढ़ी को यह बताने की आवश्यकता है। इसलिए 'हैदराबाद में सत्याग्रह क्यों' शीर्षक से नया अध्याय लिखना आवश्यक हो गया।

फिर भी पाठकों के सामने यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि किसी भी बुद्धि से यह आर्य सत्याग्रह का सम्पूर्ण इतिहास नहीं है। कई पाठकों का आग्रह था कि और कुछ नहीं तो सब सत्याग्रहियों के नाम ही दे दिए जाएं। पर वह भी सम्भव नहीं था। यदि सत्याग्रह का भी पूर्ण इतिहास दिया जाता तो पुस्तक का आकार वर्तमान आकार से चौगुना तो हो ही जाता। फिर कागज और छपाई की महंगाई को ध्यान में रखते हुए भी हाथ खींचना पड़ा।

चित्रों के सम्बन्ध में भी एक बात। लेखक ने जहाँ केवल अपने जत्थे की आपबीती लिखी है, वहाँ चित्र भी उन्हीं व्यक्तियों के दिए हैं जो निजी रूप से उसके या उस जत्थे के सम्पर्क में आए थे। अनेक अन्य जत्थों की आपबीती इससे भी अधिक मार्मिक, रोमांचक और घटना-प्रधान हो सकती है, पर लेखक को तो हर हालत में अपनी सद्धमण-रेखा का ही पालन करना था, अन्यथा विस्ताररूपी दशानन के पंजे हैं बचना कठिन हो जाता।

पाठकों को उसी आग्रह के परिणामस्वरूप यह पुस्तक आपके हाथ में है।

शहीद दिवस

—अमितीश वेदालंकार

११ मई, १९८६

अन्तर्वस्तु

(१)

२८ जनवरी...	६
चलते चलते रेल में	१३
सिकन्दराबाद में दो रातें	१७
गिरफ्तार हो गए	२०
जेल की ओर	२३
चंचल गुंडा	२७
अदालत में	३१
मि० हालिन्स आए	३६
बदरखा	४१
बिखरी यादें	४६
पूर्णमेवावशिष्यते	७३
सत्याग्रह की बलि	७६
वन्दी-	८०

(२)

हैदराबाद में सत्याग्रह क्यों

नींव बिश्वासघात पर	८७
राजनीतिक परिदृश्य	९०
खिलाफत आंदोलन के विषय बीज	९४
इस्लामी सल्तनत का स्वप्न	९७
आर्यसमाज की चुनौती	१००
हुतात्मा सत्याग्रही	११७
उज्ज्वलतर शौर्यदीप	१२०
परिक्षिप्त-१	१२५
परिक्षिप्त-२	१२७

(१)

(१)

२८ जनवरी.....

२८ जनवरी 1939 का दिन था—

अभी दो दिन पहले 'वसन्तपञ्चमी' मना कर चुके थे। चारों ओर वसन्ती रंग के दर्शन किये थे—पुरष में भी और प्रकृति में भी। जिस प्रकार छोटे-छोटे बच्चे चारियों ने वसन्ती रंग की धोतियां पहनी थीं और उपाध्याय वर्ग ने वसन्ती रंग का दुपट्टा गले में डाला था, उसी प्रकार प्रकृति भी पीत पुष्प-गुच्छ का परिधान पहन कर सज्जज कर खड़ी थी।

उस दिन हमने शिवाजी, राणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह जैसे महापुरुषों को याद किया था, जिन्होंने प्रभु से प्रायना की थी—'मेरा रंग वे वसन्ती चोला' और फिर न केवल स्वयं ही केसरिया बाना पहना था, किन्तु अपने असंख्य अनुयायियों को भी उसी रंग में सराबोर कर दिया था। और फिर एक आंसू उस वीर हकीकत राय की स्मृति पर गिराया था, जिसने धर्म की बलि बेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे दी थी और अपने नाम के साथ इस पर्व को भी अमर कर दिया था।

उससे और चार दिन पहले 22 जनवरी को 'हैदराबाद-दिवस' मना कर चुके थे। उस सुदूर दक्षिण की मुस्लिम रियासत के अनेक अत्याचारों की, धार्मिक कृत्यों पर पाबन्दी की और नागरिकता के अपहरण की बड़े जोश के साथ हमने चर्चा की थी और साथ ही सार्वदेशिक समा की सत्याग्रह-धोषणा भी सुनी थी।

फरवरी मास के अन्तिम दिनों में विश्वविद्यालय की वार्षिक परीक्षा होने वाली थी। केवल एक महीना बचा था कि मैं भी अपने सहपाठियों के साथ स्नातक बनता—मेरे भी संरक्षक औरों की तरह सगे-सम्बन्धियों को प्रभूत संख्या में एकत्र करके वार्षिकोत्सव पर समावर्तन-संस्कार देखने आते और मैं अपनी एक माता की गोद से दूसरी माता की गोद में—कुल माता की संकुचित गोद से भारत माता की विस्तृत गोद में—जा पहुँचता। किन्तु ऐसा न होने पाया।

और अचानक ही 28 जनवरी को आर्यसमाज के सर्वप्रथम सर्वाधिकारी

श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी का तार आ पहुंचा और सत्याग्रही सैनिकों का आह्वान हुआ।

आर्य समाज की प्राण-भूत संस्था से मांग की गई। हैदराबाद में आर्य-समाज पर संकट है। सेनापति ने विगुल बजाया और इधर एक इशारे पर बलि-पन्थी सिपाही कमर बांध कर तैयार हो गये। न भूत देखा, न भविष्य। उसी रात को कुछ दीवाने चुपचाप अपने माथे पर कुंकुम का रक्त-तिलक लगा कर पीयूष-वाहिनी मन्दाकिनी का शुभ्र अञ्चल अपने अन्तिम नमस्कारों से अभिषिक्त करके, और चिर-अचल भारतीय संस्कृति के अमर सन्देश वाहक वृद्ध पिता महिमा के चरणों में अपना प्रणत प्रणाम कर उद्देश्य-पूर्ति के लिये गाड़ी पर बैठ गये।

उस समय की बात कह रहा हूँ जिस समय इस विषय में समाचार-पत्र संध्या मूक थे। दुनिया के कानों को पता भी नहीं था कि यज्ञ की प्रथम आहुति चल पड़ी है।

दिल्ली पहुंचे। संरक्षक अपने बाल-गोपालों को इस अद्भुत रण-सज्जा के लिये बाटिबद्ध देख कर विस्मित रह गये—“यह क्या! अभी तो समाचार-पत्रों में कोई खबर भी नहीं कि सत्याग्रह शुरू हो गया है; सब से पहिले तुम को कैसे भेज दें—जानबूझ कर आग की भट्टी में कैसे झोंक दें, उन नृशंस अत्याचारियों की रियासत में, जहां कोई ‘उत्तरदायी शासन’ नहीं है, जहां कोई धार्मिक सहिष्णुता का नाम लेने वाला नहीं है, जहां हरेक हिन्दू काफिर समझा जाता है और दिन-दहाड़े कत्ल होते रहते हैं—वहां यदि किसी ने चलते फिरते पेट में छुरा भोंक दिया तो क्या होगा?”

“क्या होगा, यह तो हम नहीं जानते। हम तो केवल इतना जानते हैं कि हमारे सेनानी ने हमें बुलाया है और इस समय एक सच्चे सैनिक का कर्तव्य यही है कि वह बिना न्यूनतम किये चुपचाप अपने सेनापति के आदेश का पालन करे। आर्य समाज में हमने जन्म लिया है, उसी ने हमें पाला है और पुष्ट किया है और चौदह साल तक हम आर्य समाज की सर्व प्रमुख संस्था—गुरुकुल—में शिक्षा पाते रहे हैं। फिर यह कैसे हो सकता है कि जब आर्य समाज पर संकट आया है—परीक्षा का समय है, तो हम पीछे हट जायें! यह नहीं हो सकता। हमारा निश्चय अटल है। अब जो कदम आगे बढ़ गया वह पीछे नहीं हट सकता।”

घण्टों उपदेश—घण्टों वादविवाद! बड़े-बड़े बुजुर्गों ने समझाया—“विद्यार्थी जीवन तैयारी के लिये है। अभी देश को और समाज को तुम से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।” किन्तु सबका एक ही उत्तर—“हम नहीं जानते। हमें तो बुलाया गया है। सैनिक का काम सोच-विचार का नहीं है।”

और फिर तारों पर तारें—“कोई गांधी जी को, कोई सभा के प्रधान को, और कोई किसी को, कोई किसी को। पिता क्रुद्ध हो गये—कपूत है, नालायक है, कहना नहीं मानता—कह कर घर से निकाल दिया।

निश्चय फिर भी अटल रहः।

जब सबकी सुनी अनसुनी करके सब के हम सब शाम को 5 बजे स्टेशन पर पहुँच ही गये—तो मातायें रो पड़ीं, बहनें पछाड़ खा गईं और अन्य सम्बन्धी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये।

कोई स्वागत-सत्कार नहीं, कोई जुलूस-जलसा नहीं, एक भी फूल की माला नहीं, और सब चुपचाप—क्योंकि ऐसा ही वह अवसर था और ऐसा ही सेनापति का आदेश था।

सार्वदेशिक सभा के मन्त्री श्री प्रो० सुधाकर जी ने विदाई दी, इन्जिन ने सीटी दी और हम सब हाथ में एक थैला और कन्धे पर कम्बल लेकर मद्रास एक्सप्रेस में चढ़ बैठे। गाड़ी चल दी। जो सगे सम्बन्धी स्टेशन पर छोड़ने आये थे वे जाने कितनी हसरत भरी निगाहों से, जाने कितनी देर तक, जिस दिशा में गाड़ी गई थी उसी दिशा में ताकते रहे।

दिल्ली से पन्द्रह विद्यार्थियों का जत्था चला था। मेरे साथ जो अन्य चौदह विद्यार्थी थे उनके नाम निम्न हैं—

धीरेन्द्रकुमार (चतुर्थ वर्ष), विद्यासागर (3 य वर्ष) देवराज (3 य वर्ष) सत्येन्द्र (3 य वर्ष) ओमप्रकाश (3 य वर्ष) इन्द्रसेन (3 य वर्ष) विजयकुमार (2 य - वर्ष) सतीशकुमार (2 य वर्ष) उदयवीर (2 य वर्ष) मनोहर (2 य वर्ष) रामनाथ (2 य वर्ष) विद्यारत्न (2 य वर्ष) चन्द्रगुप्त (1 म वर्ष) और विश्वमित्र (1 म वर्ष)।

पूरी रात और पूरा दिन—गाड़ी में। चौबीस घण्टे तक लगातार सफर—धूआं, कोयला और निरन्तर छक् छक् छक् की कर्णकटु ध्वनि—परेसानी।

30 जनवरी की शाम को ठीक 6 बजे वर्धा के स्टेशन पर उतरे—हमने दिल्ली से वर्धा तक का टिकट लिया था, हैदराबाद तक सीधा टिकट जान ब्रुज कर नहीं लिया।

स्टेशन के पास ही जमनालाल बजाज बमशाला में ठहरे। चौकीदार ने पूछा—‘कहाँ से आये हो?’ बता दिया—‘सागपुर से’ ‘कहाँ जाना है?’ उत्तर में वर्धा से अगले स्टेशन का नाम ले दिया। मंजिल तक पहुँचने से पहले हम अपना परिचय गुप्त रखना चाहते थे। वैसे न करले पर मंजिल तक पहुँचने में बाधा हो सकती थी।

शिक्षामन्दिर देखने गये—कुछ आवच्छनीय सा इम्प्रेशन मन में लेकर आये।

रात की चांदनी में खुली छत पर मीटिंग बैठी—अच्छा, यहां तक तो बिना बाधा के पहुँच गये। अब आगे?

सारी समस्या तो आगे ही है।... वेष बदल कर जाना पड़ेगा। पर 15 विद्यार्थी आखिर कौनसा वेष बदल कर जावें। परामर्श हुआ और फिर निर्णय हुआ।

हरेक ने अपना अपना वेष चुन लिया । और अगले दिन सवेरे ही धोती फाड़कर अचकन और पजामे सिलवाये गये— तुर्की टोपी और हैट एवं अन्य तरह तरह की टोपियाँ खरीदी गईं । किसी ने कुछ किया, किसी ने कुछ । लेखक अचकन और तुर्की टोपी पहनकर पूरा मुसलमान बन गया । एक साथी हैट पतलून पहनकर अंग्रेज बन गया । एक साथी सिर के जटा-जूट में कंधा अटकाये और हाथ में लोहे का कड़ा पहने 'सरदार जी' बन गया । एक महाशय रामनामी दुपट्टा ओढ़े, गले में माला डाले और माथे पर तिलक लगाये 'पंडित जी' बन गये । एक बड़ी तोंद को कुछ और बड़ा बनाकर, ढीली-ढाली धोती बांध कर सेठ जी बन गये— और एक अत्यन्त मैले कुचैले कपड़े पहन कर गरीब-सी शकल बनाये सेठ जी का नौकर बन गया । जवाहर-कट कुर्ती पहन कर कोई सोशलिस्ट बना, और कोई गलकट कुर्ती पहन कांग्रेस मैन । इस प्रकार बहुरूपियों की यह सेना 31 जनवरी की शाम को फिर वर्धा से आगे के लिये सवार हो गई ।

सवेरे से लेकर शाम तक यह दिन बड़ी व्यस्तता में बीता था । सवेरे सवेरे वर्धा से 4 मील दूर सेवाग्राम हो आये, फिर मगनवाड़ी और नालवाड़ी भी छू कर चले आये । और लेखक दुपहर की कड़ी धूप में श्री काका कालेलकर और दादा धर्माधिकारी के पास जा कर यज्ञ की इस प्रथम आहुति के लिये आशीर्वाद भी ले आया ।

काका कालेलकर को जब आर्य समाज द्वारा सत्याग्रह शुरू होने की सूचना मिली तो एक दम गरम हो उठे । छूटते हो बोले : 'इससे देश की आजादी 50 साल पीछे हट जाएगी । देश में साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो जाएंगे ।' जब मैंने सत्याग्रह करने के कारणों पर कुछ विस्तार से प्रकाश डाला, तो वे आश्चर्यचकित हुए और फिर भरे हृदय से सत्याग्रह की इस प्रथम आहुति के लिए आशीर्वाद देने को तैयार हुए ।

सेवाग्राम में उस समय महात्मा गांधी नहीं थे । मैं उनको आर्यसमाज द्वारा सत्याग्रह शुरू किए जाने की सूचना देना चाहता था और किन परिस्थितियों में सत्याग्रह करना पड़ा, यह बताना चाहता था । वह अवसर नहीं मिला ।

रात के लगभग 10 बजे का समय । बल्हारशाह स्टेशन से हैदराबाद रियासत की हद शुरू हो गई ।

हरेक स्टेशन सुनसान ! काली रात, काली बर्दी, काली शकल— सिवाय इन यमदूतों के स्टेशन पर और कोई नजर ही नहीं आता । और ये यमदूत हरेक डिब्बे में जा जाकर झाँकते हैं — कहीं कोई संदिग्ध व्यक्ति...

मैं अपने दो तीन साथियों के साथ अन्त के डिब्बे में । चिन्ता के मारे नींद नहीं । इन यमदूतों के हाव-भाव से बेहद घबराहट । सब डायरी या नोट बुक— जिन पर अपना नाम या 'गुरुकुल कांगड़ी' लिखा हुआ था, फाड़कर फेंक दीं, कहीं तलाशी न लें इसलिए ।

इतने ही में एक स्टेशन पर एक यमदूत ने पुनः खिड़की के अन्दर झांका/
आधी रात । पूछा—“कहाँ जाना है ?”

मैंने कहा— “सिकन्दराबाद” — और चुप हो गया ।

० ० ०

(२)

चलते चलते रेल में

वैसे तो ट्रेन में दिल्ली से सीधा हैदराबाद का एक डिब्बा लगता था । पर यदि हम उसमें बैठ जाते तो इसका अभिप्राय यही होता कि हम हैदराबाद जा रहे हैं । इसलिये जानबूझ कर ही हम दिल्ली से उस डिब्बे में नहीं बैठे थे । और जो हमने दिल्ली से वर्धा और वर्धा से सिकन्दराबाद का टिकट लिया था वह भी इसीलिये लिया था कि यदि सीधा हैदराबाद का टिकट लेंगे तो पकड़े जाने का अन्देश है ।

फलतः, काजीपेट में गाड़ी बदलनी थी । रात को तीन बजे गाड़ी काजीपेट पहुंची । साथी सब पैर पसार कर निश्चिन्तता के साथ सो रहे थे । पर यहां फिर के सारे नींद कहां ? रह रह कर ख्याल आ रहा था कि हम किस अन्धकार की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं—कोई जान पहचान नहीं, कोई संगी-साथी नहीं, कोई सहायक नहीं ! चारों ओर, जहाँ तक दृष्टि जाती है, अन्धकार ही अन्धकार है । सचमुच हमने अथाह सागर के नील-वक्ष पर अपनी यह छोटी-सी नौका छोड़ दी है—कोई इसका मल्लाह नहीं, कोई इसकी पतवार नहीं, और किस दिशा में जाना है यह भी कुछ पता नहीं ।

...पर यह सब सोचने का भी अवसर कहां है ?

साथियों को जगाया और थैला हाथ में लेकर डिब्बे से बाहर निकले । उस आधी रात की नीरवता में साथी अखि मलते हुए मेरे साथ-साथ कुछ कदम आगे बढ़े । जिस डिब्बे पर 'हैदराबाद' लिखा था उसके सामने आकर ठिठक गए । इतने में पीछे से आवाज आई—“हां, यही डिब्बा है, चढ़ जाओ ।”

पीछे मुड़कर जो देखा तो हैरानी की हद न रही—वही काली बर्दी और काली शकल लिये यमदूत हमारा पीछा करता आ रहा है और अब हैदराबाद के

डिब्बे के सामने ठिठकता देखकर आदेश दे रहा है कि चढ़ जाओ, यही डिब्बा है । निश्चय ही उसने मांप लिया है कि हम हैदराबाद जा रहे हैं ।

अब क्या किया जाय ?

चुपचाप बिना कहे सुने उस डिब्बे में चढ़ गये । कुल चार तो मेरे साथ थे ही—जब देखा कि डिब्बे में हमारे बैठ चुकने पर वह यमदूत भी निश्चिन्तता से इधर-उधर घूम रहा है और उसका ध्यान हमारी ओर नहीं है, तो हम दो लड़के फिर उस डिब्बे से गायब हो गये ।

लेखक तो गाड़ी के ठीक दूसरे छोर पर पहुंचा और एक डिब्बे में घुस कर चुपचाप खड़ा हो गया । खड़ा हो गया इसलिये कि कहीं बैठने की जगह नहीं थी । खचाखच भीड़ भरी पड़ी थी और इस समय सबके सब यात्री बेहोश होकर सो रहे थे, कुछ ऊंच रहे थे । यदि किसी को जगह देने के लिये जगाता और कुछ कहासुनी हो जाती—क्योंकि सीकर उठा हुआ आदमी अपने आपे में कम रहता है—तो व्यर्थ में ही शोर मचता, और यदि कहीं बात बढ़ जाती—क्योंकि अधिकांश यात्री मुसलमान तो थे ही, और अक्सर मुसलमान बड़ी जल्दी गरम हो जाते हैं—तो प्लेटफार्म पर घूमने वाले यमदूत से फिर मुठभेड़ होती । अपने राम इसी से बच बचकर निकलना चाहते थे ।

थोड़ी देर बाद ही एक साथी दौड़ा दौड़ा आया और उसने भरपेट हुए गले से कहा—“जल्दी चलो, बुला रहे हैं । पुलिस आ गई है ।”

मैंने देखा कि उसकी भयभीत आकृति पर घबराहट के चिन्ह हैं, और बाणी में किर्कतव्य-विमूढ़ता नाच रही है । इतनी मुश्किल से बच-बचाकर वहां छिपकर खड़ा हुआ था और अब जबकि हरेक की अपनी जिम्मेवारी अपने ऊपर थी और किसी न किसी तरह हैदराबाद पहुंचना ही हरेक का उद्देश्य था—फिर वह मुझे उस उद्देश्य से विचलित करने के लिये क्यों मेरे पास आया ?

पर फिर स्थिति की गम्भीरता को देखकर मेरे मन में विचार आया कि जो लगातार चौदह साल तक एक साथ रहे हैं, एक साथ जिन्होंने खान-पान किया है और पाठ पढ़ा है, जो एक साथ खेले कूदे हैं और अब तक सुख में या दुःख में हमेशा एक साथ ही व्यवहार करते आये हैं, वे अब अचानक ही अपने उस चिरन्तन अभ्यास को कैसे भुला सकेंगे और अपनी विपदा को अकेले कैसे सहार सकेंगे ?

और फिर यह सोचकर कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, रहेंगे तो सब साथ ही, और छोटी श्रेणियों में पढ़ी हुई एक कहावत—“death with friends festival”—को याद कर मैं उसके साथ हो लिया और उसी हैदराबाद वाले डिब्बे के पास जाकर देखा कि उस डिब्बे को पुलिस ने चारों ओर से घेरा हुआ है ।

जिस यमदूत ने इस डिब्बे में हमें भड़कते हुए देखा था वह जाकर एक दम पुलिस इन्स्पेक्टर को बुला लाया। पीछे बचे हुए दोनों साथी घिर गये और उनसे कहा गया कि पहले अपने सब साथियों को यहां उपस्थित करो और अपने नाम तथा पूरे पते लिखवाओ।

इसी परिस्थिति में वह मुझे बुलाने गया था— क्योंकि वह स्वयं पुलिस को देखते ही घबरा गया था और निश्चय नहीं कर पाया था कि क्या करे—नाम और पते लिखवाये या न लिखवाये।

पुलिस इन्स्पेक्टर के डराने धमकाने से वह अन्य साथियों को बुला लाया और धीरे धीरे पूरे पन्द्रह के पन्द्रह हम वहां उपस्थित हो गये।

पुलिस इन्स्पेक्टर ने कहा—“अपने नाम-पते लिखवाइये।”

“क्या आप हरेक यात्री का नाम और पता लिखते हैं ? इस डिब्बे में और भी इतने यात्री हैं, आप उनमें से किसी को जगाकर उसका नाम और पता नहीं पूछते।” और यदि आप परिचय ही चाहते हैं तो आप के लिये इतना ही काफी होना चाहिए कि हम सब ‘स्टूडेंट्स’ हैं और ‘हिस्टॉरिकल टूर’ पर जा रहे हैं।”

इस पर उसने तेज होकर कहा—“आपको अपने नाम और पते लिखवाने पड़ेंगे। जब तक आप नहीं लिखावायेंगे, तबतक गाड़ी आगे नहीं जावेगी”—और उसने सिपाही से इंजन-ब्राइवर को बुलवाकर हमारे सामने ही कह भी दिया कि आज गाड़ी आगे नहीं जावेगी।

हम देख रहे थे कि इस हुज्जतबाजी में गाड़ी आधा घण्टा पहले ही लेट हो चुकी है। यह भी क्या विचित्र तमाशा है कि आज इनके कहने से गाड़ी भी आगे नहीं जावेगी ! गाड़ी अपने घर की जो हुई !

और फिर थोड़ी देर रुककर उसने कहा—“और यदि आप तब भी नाम और पते नहीं लिखावायेंगे तो देखिये, यह है वारण्ट, आप को पुलिस इन्स्पेक्टर की हैसियत से मैं गिरफ्तार कर सकता हूं।”

निजाम रियासत की हकूमत की और उसके आतिथ्य की पहली बानगीं देखी।

हैदराबाद बिना पहुँचे और सत्याग्रह बिना किये ही गिरफ्तार हो जावें— इसके लिए हम तैयार नहीं थे। इसलिये लाचार होकर नाम लिखवाने शुरू किये। लेखक ने अपना नाम लिखवाया—खतीस चन्द और अपने बाप का नाम लालचन्द। पूछा कहाँ से आ रहे हो ? कह दिया-वर्धा से। वहाँ क्या करते हो ? ‘नालवाड़ी’ में पढ़त हूँ। फिर उस बिद्यारत्न ने जो सिक्क बना हुआ था, अपना नाम लिखवाया—रतन सिंह और अपने बाप का नाम जोरावर सिंह। इन्द्रसेन ने लिखवाया—तेज सिंह और

हुकम सिंह। सत्येन्द्र ने—जो अंग्रेज बना हुआ था, लिखावाया-सेण्ट पील और सेण्ट पीटर्स। कोई 'श्री भिक्षु' और कोई अखिलानन्द इत्यादि।

रहने का स्थान सब का अलग-अलग—कोई वर्षा में रहता है, कोई नागपुर में, कोई सी०पी० में, कोई यू०पी० में, कोई दिल्ली, कोई पेशावर। फिर उसी हिसाब से पढ़ते भी अलग-अलग ही हैं—कोई शिक्षामन्दिर वर्षा में, कोई त्रिबिया कालिज दिल्ली में, कोई हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस में, कोई शान्ति निकेतन बोलपुर में, और कोई लखनऊ में कोई, हरिद्वार में।

लिखते लिखते पुलिस वाले अपना सन्देह प्रकट करते जा रहे थे—बनावटी नाम समझकर, और इधर हमें मनमें हंसी आ रही थी। उनका खयाल था कि उसमानिया यूनिवर्सिटी से जो विद्यार्थी 'वन्देमातरम्' गीत गाने के कारण निकाले गये थे और फिर नागपुर यूनिवर्सिटी में जाकर प्रविष्ट हुए थे, वे ही अब यूनिवर्सिटी छोड़कर सत्याग्रह करने आये हैं। उनके इस सन्देह का कारण यह था कि हम नागपुर और वर्षा वाली लाइन से आ रहे थे। हम हरिद्वार से चलकर आ रहे हैं, यह तो उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

ईस तरह जब कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा कागज पर नोट करके भान-मती अपना कुनबा जोड़ चुकी, तो गाड़ी चली। किन्तु गाड़ी चलने से पहले उन्होंने हमारे पूरे पन्द्रह टिकट भी गिनकर अपने पास रख लिये। टिकट चँकर और गार्ड के हस्ताक्षर लेकर हमने टिकट दे देने में कोई हानि नहीं समझी। उनको डर था कि कहीं कोई रास्ते में ही न उतर पड़े !

दुःस्वप्न की-सी दुश्चिन्ताओं से भरी यह रात बीती।

प्रातः 6 बजे सिकन्दराबाद स्टेशन पर उतरे।

टिकट हमें लौटा दिये गये।

रेलवे पुलिस का काम समाप्त हुआ। अब आगे सिटी पुलिस का काम था।

जब प्लेटफार्म से बाहर निकलने लगे तो हमारे दोनों ओर पुलिस थी और बीच में हम।

० ० ०

(३)

सिकन्दराबाद में दो रातें

सिकन्दराबाद पहुंचे तो कहीं कोई जान-पहचान नहीं थी। पूछ-ताछ करके बड़ी मुश्किल से एक धर्मशाला का पता लगा—पुरुषोत्तम दास नरोत्तम दास की धर्मशाला जो शायद सारे सिकन्दराबाद में सबसे बड़ी थी। उसके मालिक से ठहरने की जगह मांगी तो उसने कहा “यहां कहीं जगह खाली नहीं है।” बड़ा निराश होना पड़ा। असली बात यह थी कि उसके मालिक को शक हो गया था कि कहीं ये सत्याग्रही न हों—नहीं तो इतने नौ जवान विद्यार्थी आजकल के दिनों में—जिन दिनों कहीं किसी कालिज का ग्रीष्मावकाश भी नहीं होता, इकट्ठे कैसे आते। इसलिए वह जगह देने को तैयार नहीं हुआ।

और भी कई धर्मशालायें देखीं—कोई तो ठहरने लायक ही नहीं थी, कहीं जगह ही नहीं थी, और कहीं यह सोचकर कि ये सत्याग्रह करने आये होंगे—सबने जगह देने से इन्कार कर दिया। लोग डरते थे कि सत्याग्रहियों को ठहराया तो पुलिस हमारे पीछे पड़ जायगी और तंग करेगी।

इस आतंक को देख कर हैरानी हुई—देखा कि लोग बात भी इतने घीमे करते हैं कि कहीं कोई सुन न ले। यह तो स्पष्ट लगता था कि हरेक हिंदू के मन में हमारे प्रति सहानुभूति थी, किंतु अपनी सहानुभूति को किसी भी तरह वह क्रियात्मक रूप से प्रकट नहीं कर सकता था।

देखा कि सड़क पर चलने वाले लोग, जो हंस रहे हैं, खुश हैं, मस्त हैं और अच्छे कपड़े पहने हुए हैं—वे सब के सब मुसलमान हैं। किसी भी हिन्दू के चेहरे पर रौनक नहीं, खुशी का निशान नहीं। यद्यपि इस शहर की आबादी 85 प्रतिशत हिन्दू है, पर फिर भी यदि कोई हिंदू कहीं नजर आते हैं तो वे हैं केवल दुकानदार जो चुपचाप अपने आप को अपनी दुकान के वातावरण में ही सिकोड़ कर बैठे हुए हैं। लगता था कि ऐसा भय का राज्य चारों ओर छाया हुआ है जिसके कारण उनकी हंसी बाहर नहीं निकल सकती—कहीं हंसे कि एक दम पकड़े गये, मानों हंसना भी पाप है!

आखिर उसी धर्मशाला के बरामदे में—जो खाली पड़ा था, ठहरने की स्वी-

कृति मिल गई। हमें भी कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि सामान तो कुछ था नहीं। अपनी एकमात्र सम्पत्ति कम्बल और थैला—कोने में पटक दिये।

देखते ही देखते सी०आई०डी० के दो आदमी धर्मशाला के मुख्यद्वार पर दोनों ओर आकर बैठ गये। दो सड़क के ऊपर, और दो हमारे साथ ही अन्दर हमारी हरेक क्रिया का निरीक्षण करने के लिए और प्रत्येक गति-विधि की जांच करने के लिए।

दुपहर को 10 हमें थाने में बुलाया गया। करीब घंटे भर प्रतीक्षा करने के बाद थानेदार साहब आये और हमारे नाम-पते पूछने लगे। हमने वही पुराने नाम जो काजीपेट में लिखवाये थे, लिखवा दिये। पूछा—किस लिये आये हो? कह दिया—सैर के लिये आये हैं। पूछा—कब तक ठहरोगे? कह दिया—तीन चार दिन सैर करके चले जायेंगे। थानेदार-साहब अपने अस्मिस्टेंट के सामने हमारी सचाई के विषय में संदेह प्रकट करने लगे—और उनके इस संदेह पर मन में हंसते हुए हम वापिस धर्मशाला में लौट आये।

एक मुश्किल और आ गई। हम दिल्ली से जितने पैसे लेकर चले थे, सारे समाप्त हो गये। जान-पहचान किसी से थी नहीं—यह पहले ही कह चुका हूं। समस्या सामने थी—क्या किया जाये? रोटी भी कहां से लायें? समाधान कोई था नहीं।

अकस्मात् ही ध्यान आया कि हैदराबाद में गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक श्री बैरिस्टर विनायकराव विशालंकर रहते हैं—उनके पास किसी तरह खबर भिजवाई जावे। इधर-उधर पूछताछ की, तो पता लगा कि उनको जानते तो सभी हैं, क्योंकि वे स्टेट के आर्यसमाज के सर्वमान्य नेता हैं, किन्तु उनके पास खबर पहुंचाई कैसे जावे? हमारे चारों ओर सी० आई० डी० का पहरा है। हम धर्मशाला से बाहर एक कदम भी नहीं रख सकते। किसी से बात नहीं कर सकते। तो फिर?

पान खाने के बहाने एक पनवाड़ी को अन्दर बुलाया। गुरुकुल निवास के कारण पान खाने का अनभ्यस्त होने पर भी पान खाया और उसको तैयार किया कि वह हमारी चिट्ठी लेकर विनायकराव जी के पास पहुंचा दे। वह तैयार हो गया नौजवान था। हमारी चिट्ठी ली और साइकिल लेकर सीधा हैदराबाद पहुंचा—हैदराबाद वहां से चार मील दूर तो था ही। लगभग दो घंटे बाद वह उसका उत्तर लेकर सकुशल वापिस आ गया। लिखा था—धराने की कोई बात नहीं। अभी दो आदमी तुमसे मिलने आयेंगे। वे सब प्रबन्ध कर देंगे।

यथा समय वे दोनों व्यक्ति आये। पान देने के बहाने पनवाड़ी अंदर आया और बता गया कि वे दोनों आगये हैं, और इस समय पास वाले अमुक होटल में बैठे हैं। मैं भी उस होटल में पहुंच गया—तीनों ने चाय के प्याले मंगवा लिये और आपस में बातें करने लगे

उनको बताया कि किस तरह हम यहां तक पहुंचे । आगे वया करें—यह हमें कुछ पता नहीं ।

हमारी परिस्थिति अच्छी तरह समझ कर वे उसी दिन रात को मिलने का वायदा कर लौट गये ।

दिन कैसे गुजरा—कुछ कहा नहीं जा सकता । आपस में बात नहीं कर सकते — क्योंकि सिर पर सी० आई० डी० तैनात है । इधर-उधर कहीं बाहर नहीं जा सकते — क्योंकि दरवाजे पर भी यमदूत बैठे हैं और सड़क पर भी । निरी उदासी, गम और भविष्य की विविध कल्पनायें । मन इतना भारी हो गया जैसे कि उसमें उड़ने की शक्ति न रही हो—विचारशून्य, जड़ ।

रात के ग्यारह बजे । सड़क की रोशनी से दूर—एक घना पेड़, नीचे अंधकार— न जाने कितनी गलियां घूम घूम कर मैं वहां पहुंचा था — कोई पीछा न कर सके इसलिये—वे दोनों फिर मिले ।

विचार-विनिमय हुआ कि हम किस तरह हैदराबाद पहुंचे और सत्याग्रह करें । कई स्कीमें बनीं । किंतु हरेक में कोई दोष निकल आता । अंत में अगले दिन के लिये बार्ता स्थगित करके वे लौट गये ।

अगला दिन । हमने सबेरे ही शहर में घूमना शुरू कर दिया—पन्द्रह लड़के—कोई किसी ओर और कोई किसी ओर—इधर से उधर, उधर से इधर । कभी धर्मशाला एक दम बिल्कुल खाली, कभी एक दम सारे के सारे वहां उपस्थित । हमारी गति-विधि की जांच करने वाले और हमारा पीछा करने वाले सी० आई० डी० के आदमी तंग हो गये । कहां तक पीछा करते—कब तक पीछा करते ? उनकी ड्यूटी बदली, उनकी संख्या भी दुगनी हो गई—यहां तक कि एक एक लड़के के पीछे एक एक सिपाही । किंतु हमने निरुद्धि घूमना नहीं छोड़ा । शहर की सारी गलियां छान मारीं । एक-एक वार नहीं, बीस-बीस बार, फिर भी हम बिना थके घूमते ही चले गये । और इस घूमा-घूमी में लेखक एक साथी को साथ लेकर वेष बदल कर— हैदराबाद पहुंचा — बैरिस्टर विनायकराव जी से मिल आया और सारा शहर घूम आया और देख लिया कि कहां सुलतान बाजार है, कहां आर्यसमाज है, कहां थाना है, कहां कहां पुलिस की चौकियां हैं — इत्यादि । आर्यसमाज में ताला लगा हुआ था । हरेक मुख्य मुख्य सड़क के हरेक मोड़ पर संगीन-बन्द पुलिस की चौकियां तैनात थीं, जहां से किसी भी संदिग्ध और अपरिचित आदमी का जाना खतरनाक था । और इस खतरे को हमने इतनी आसानी से पार कर लिया कि मन में हंसी आ रही थी ।

शाम को जब साथियों ने हम दोनों को सकुशल वापिस लौटा हुआ पाया तो उन्हें तसल्ली हुई—उन्हें डर था कि कहीं ये गिरफ्तार न हो जायें ।

फिर बैठकर कुछ चिट्ठियाँ गुरुकुल को लिखीं, कुछ घर को लिखीं। एक चिट्ठी महात्मा गांधी को लिखी, कि एक तो हिन्दुस्तान की रियासतों में वैसे ही अन्याय और अत्याचार का बोलबाला है, उस पर यह निज़ाम हैदराबाद ! यह तो साम्प्रदायिक पक्षपत्ती में बाकी सब रियासतों को पार कर गया है। यहां की जनता जानती ही नहीं कि नागरिक स्वतन्त्रता किसे कहते हैं ? ऐसे कठिन समय में स्टेड-कांग्रेस का सत्याग्रह बन्द करवा कर क्या आपने उचित किया है ? इन्हीं सब परिस्थितियों से विवश हो कर आर्यसमाज को सत्याग्रह का विगुल बजाना पड़ा है। इत्यादि। और यह सब चिट्ठियाँ भी बड़ी तिगड़म बाजी से लैटरबक्स में डलवाईं।

सिकन्दराबाद में दो रातें ऐसी बीतीं जैसे किसी जासूसी उपन्यास की घटनाएं हों।

• • •

(81)

गिरफ्तार हो गये

समय स्वयं एक भारी उपचार है। जब क्षण क्षण चिन्ता, व्याकुलता और किकत्त-व्यविमभूढ़ता से-भरी दो पूरी रातें उस सिकन्दराबाद की घर्मशाला हो चुकीं, तो उस कालिमा में से स्वयमेव प्रकाश की झलक आने लगी। जिस में काली विभीषिका का पर्दा आंखों पर छाकर मन में दुविधाओं की सृष्टि कर रहा था, वह स्वयमेव खिसकने लगा। अपने कार्य में अचल और चतुर गुप्तचरों के कारण हमें डर था कि कहीं अपने उद्देश्य की सिद्धि में हमें विफलता न हो, क्योंकि वे हमारी प्रत्येक गति-विधि का निरीक्षण करते थे और ऊपर रिपोर्ट पहुंचाते थे।

इन दो दिनों के अन्दर उनकी ड्यूटियां कई बार बदल चुकी थीं। पर हमने भी उनको कम परेशान नहीं किया था। सबेरे से निकलते और शाम तक लगातार घूमते ही रहते। कभी इस गली और कभी उस गली। सारी गलियां छान डालीं। और मजा यह कि हरेक अलग-अलग जाता था। हमें और कोई काम तो था नहीं। उस उम्र में घूमते-घूमते थकने जैसी भी कोई बात नहीं थी। वे भी विचारे पीछा करते करते परेशान हो गये। किस किस का पीछा करते, कहां तक ?

तीसरे दिन सूर्योदय होने से पहले ही भाग्यनगर के घर-घर में छोटी-छोटी

चिटों पर साइक्लोस्टाइल से छपी हुई गुप्त विज्ञप्तियां पहुंचा दी गईं कि आज शाम को 5 बजे गुरुकुल-कांगड़ी के 15 विद्यार्थियों का एक जत्था मुलतान बाजार के चौक में सत्याग्रह करेगा।

लोग हैरान रह गये कि अकस्मात् ही यह क्या हो गया ? किसी ने उन विद्यार्थियों को देखा नहीं, किसी ने उनके विषय में सुना नहीं कि स्टेट में आ भी गये हैं या नहीं। फिर अचानक ही भारतवर्ष के ठीक उत्तर से इतनी दूर दक्षिण में एक दम शाम को वे विद्यार्थी कैसे टपक पड़ेंगे !

लोग यह भी नहीं जान पाये कि वह कौनसी चिड़िया थी जो दुनिया की आंखें खुलने से पहले ही घर घर में यह अनहोनी खबर बांट आई। काश ! निजाम-राज्य के दिल — खास हैदराबाद शहर — में, मकड़ी के जाल की तरह बिछा हुआ वह गुप्तचरों का जाल उस चिड़िया को पकड़ पाता !

लोगों को गलतफहमी हो जाती है। वे अपने आप को परले सिरे का चालाक समझने लगते हैं। पर उन्हें पता नहीं कि कभी कभी सेर का सवा सेर से भी पाला पड़ता है।

...तीन बजे के लगभग एक मोटर मारुति-मन्दिर के पीछे आकर खड़ी हो गई। न जाने कहां से ? कितनी गलियों की घुम्मरघेरी के बीच में था वह देवालय। सामान्य जनता की दृष्टि से दूर, और सी० आई० डी० की दृष्टि से तो और भी दूर ! धीरे धीरे एक एक कर के पांच आदमी आये — न जाने किस रास्ते से, और आकर उस मोटर में चढ़ गये। मोटर भी हरेक मोड़ पर पुलिस नाके को बचाती हुई न जाने किस किस सड़क पर हो कर पांच बजते बजते मुलतान बाजार के सिरे पर जाकर रुक गई। उसमें से निकले पांच वीर — जैसे कि गुरुगोविन्द सिंह ने अपने हाथ से रक्त-तिलक लगाकर सबसे पहले 'पांच प्यारे' तैयार किये थे — आर्य-जाति के इतिहास में अमर बन कर जिन्होंने सिक्ख जाति का पथ-प्रदर्शन किया था। किन्तु...

किन्तु इनके साथे पर तो कोई रक्त-तिलक नहीं है। इनके वेष में तो कोई विशेषता नहीं है ?

...हां, ये ऐसे ही वीर हैं — इनके वेष में या बाह्य किसी चीज में कुछ भी विशेषता नहीं है। जो कुछ विशेषता है वह इन के अन्दर है। जरा अन्दर धुसकर देखो — देखो, वह रहा लाल लाल रक्त — तिलक... नहीं, लाल चिनगारी — छोटी सी चिनगारी उस महाज्वाला की, जो इन के अन्दर लगातार जल रही है। आवें — अन्याय और अत्याचार अपनी सेना के साथ सज्जधकर इसको बुझाने के लिये आवें, और फिर देखें कि इस ज्वाला में पड़कर वे ज्वाला को बुझाते हैं या आप बुझ जाते हैं !

दो फरबरी— इन्द्रसेन, विशारत्न, मनोहर, उदयवीर, और विश्वमित्र गिरपतार हो गये। उस दिन और मोटर का प्रबन्ध नहीं हो सका, इस लिये हम नहीं जा सके। सोचते रहे रात भर— अपने उन सौभाग्यशाली बन्धुओं के विषय में, जिन्होंने भाग्यनगर में जाकर अपने भाग्य के साथ जूआ खेला था—हमसे पहले— सबसे पहले !

और फिर तीन फरबरी—दिन भर घूमना तो काम था ही...निकल पड़े। दुपहर को खूब डटकर भोजन किया—फल भी, मिठाई भी—न जाने फिर कब नसीब हो। होते होते बलि का समय निकट आगया।

पांच पांच के दो ग्रुप बनाये—लेखक ने एक अपने साथ रखा और दूसरा अपने सहपाठी धीरेन्द्र के साथ—सारा पुरोगम तैयार कर लिया—कि किस तरह बिना एक भी शब्द बोले इशारे मात्र से सारे काम करने हैं।

आवश्यक वेष-परिवर्तन किया। किन्तु अब इस नये वेष में दरवाजे से बाहर कैसे जावें—वहां सी० आई० डी० के रूप में यमदूत बदस्तुर कायम हैं।

धर्मशाला के पीछे के चोर-द्वार से एक एक करके निकले। सारा सामान वहीं छोड़ा। सुई की नोक में से दोनों का निकलना मुश्किल था। एक ग्रुप पटुंचा रानी-गंज और दूसरा स्पेशन, क्योंकि मोटरों के यही दो अड्डे थे। वे हमारे सरकारी पहरेदार वहां धर्मशाला के बाहर न जाने कब तक बैठे रहे होंगे !

मुल्तान बाजार में जाकर उतरे तो देखा कि दूसरा ग्रुप हमसे पहले पटुंचा हुआ है, और हर एक साथी भीड़ में ऐसा गायब हो गया है कि ढूँढना मुश्किल। और भीड़ ? उसका कुछ न पछो—सड़क पर, दुकानों पर, छज्जों पर और छतों पर—चारों ओर नरमुण्ड ही नरमुण्ड। घुड़सवार पुलिस भी तैनात है और बड़ी मुस्ती से थोड़ी थोड़ी देर बाद भीड़ को तितर-बितर करने के लिये लाठी-चार्ज कर रही है। पर तमाशा ! भीड़ फिर भी लगातार बढ़ती ही जा रही है। पुलिस हैरान है कि अकस्मात् ही इतना मजमा कैसे इकट्ठा होगया !

सारे बाजार में एक बार घूमकर सब साथियों की निदिष्ट स्थान पर पटुंचने का इशारा किया। सब इसी की इन्तजार में तो थे ही, क्षण भर में इकट्ठे हो गये।

बीच बाजार...चौक—सामने टावर, घुड़सवार और संगीन-राइफलों से सुसज्जित सिपाही। जैसे किसी ने बिजली का बटन दबा दिया हो—

“जो बोले सो अभय—

वैदिक धर्म की जय !”

“आर्य समाज जिन्दावाद !”

—और इन गगनभेदी नारों की प्रतिध्वनि जनता में गूँज उठी।

फर-फर-फर निकर और पजामों की जेबों में से छिपे हुए पर्चे निकल पड़े । जनता में लूट मच गई । उनमें लिखा था : “काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक सारा हिंदुस्तान एक है । सांस्कृतिक दृष्टि से उनके दो भाग नहीं किये जा सकते । उसके एक अंग पर किये गए अत्याचार से यः सारा का सारा आर्यावर्त्त कराह उठा है । ... जब तक हमें नागरिक और धार्मिक अधिकार नहीं मिलेंगे, हम अन्तिम दम तक लड़ते चले जायेंगे.....”

पर यह सब पढ़कर सुमाने का मौका भी कहां था ! सामने से घुड़सवार पुलिस दौड़ पड़ी । संगीनों तान ली गई और आकर जबर्दस्ती मुंह बन्द कर दिये गये ।

जब गिरफ्तार करके थाने की ओर ले चले तो हजारों की भीड़ साथ चली !

• • •

(५) जेल की ओर

“अच्छा आप सब तालिबे-इल्म (विद्यार्थी) हैं । कहां पढ़ते हैं ?”

“गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार ।”

“हैं ! इतनी दूर से आ रहे हैं ! समझ में नहीं आता कि आप लोग पढ़े-लिखे समझदार होकर फिर इतनी दूर से इस फालतू काम के लिये क्यों आये ? कोई अनपढ़ बेवकूफ हो तो उसको आसानी से बहकाया जा सकता है । किन्तु आश्चर्य है कि आप ‘कालिज स्टूडेंट’ होकर भी कुछ लोगों के बहकावे में आ गये” —अमीन-साहब (थानेदार) ने अपनी ओर से बड़ी समझदारी दिखाते हुए कहा ।

“आपके इस उपदेश के लिये धन्यवाद । परन्तु क्योंकि हम पढ़े लिखे हैं और समझदार हैं, इसलिये किसी के बहकावे में नहीं आ सकते, और इसीलिये जानबूझ कर आये हैं । यदि पढ़े-लिखे न होते तो शायद यहां आने की बेवकूफी भी कभी न करते । आप अपना काम करिये, हमने अपना काम किया है ।”

हमें बेंच पर बैठकर थाने में अमीन साहब यों बड़ी सम्यता से सवाल-जबाब

कर रहे थे। हम बड़े हैरान थे कि पुलिस के अफसर भी इतनी सभ्यता से बात करते हैं !

परन्तु अगले ही क्षण—

एक पूरा साढ़े सातफुटा लम्बा-चौड़ा जवान हाथ में हण्टर लिये हुए आया। अमीन साहब सवाल-जबाब करते करते जाने किधर खिसक गये। उस जवान ने दरवाजे में घुसते ही फुलझड़ी की तरह मुंह से वह बौछार छोड़ी—गालियों की—इतने सुन्दर शब्दों में, कि उन शब्दों का प्रयोग यदि Anatomy के बाहर कहीं भी किया जाय तो सभ्य समाज दांतों तले अंगुली दबा ले। और फिर न केवल गालियाँ—बल्कि हाथ के हण्टर का भी ऐसा बेरहमी की करामात से प्रयोग किया जाने लगा कि रूह कांप उठी।

यह क्या ? कहां तो अमीन साहब ने आदर से बेञ्च पर बैठाया था और “आप-आप” करके बातें कर रहे थे, और कहां यह साक्षात् यमदूत बिना बात के ही गाली देता हुआ, हण्टर मारता हुआ, और जो जरा सी आनाकानी करे उसे गर्दनिया देकर बूट की ठोकर मारता हुआ, जबर्दस्ती बेंच से उतार कर जमीन पर बैठा रहा है !

शिक्षा का और यौवन का यह अपमान ! नहीं सहन हो सकता—नहीं, हरगिज नहीं !

पर क्या तुम्हें याद है कि तुम सत्याग्रही हो, अहिंसा के ऋत के ऋती ; तुम्हें हिंसा नहीं करनी है—स्वप्न में भी नहीं। सहना होगा, सब चुपचाप, — और अपना हाथ नहीं उठाना है।

रात को आठ बजे लारी में बन्द किया—हरेक के साथ एक-एक संगीन-राइफल से लैस सिपाही। लारी चारों ओर से बन्द—मानो बुर्कपोश...!

हवालात में पहुंचे। सब को पंक्ति में खड़ा किया गया। केवल एक कपड़ा पहने रहने दिया, बाकी लंगोट तक सब कपड़े उतरवा लिये। कोई भी चीज पास नहीं रहने दी, कागज-पेंसिल, रुपया-पैसा कुछ भी नहीं। फिर खाना-तलाशी शुरू हुई—मुंह खुलवाकर, हाथ ऊपर को उठवा कर और फिर गुप्तांगों में भी क्या छिपा कर रखा होगा !

फिर एक एक करके जो कोठरी में घकेलने वाला सिपाही था, उसने पहले ही व्यक्ति भाई सतीश को अन्दर बन्द करने से पहले फिर तलाशी ली, और गले में डले हुए तीन तार के यज्ञोपवीत को एक झटके से तोड़ डाला।

अरे ! वह देख, आर्यत्व की एक-मात्र निशानी यों छिन्न-भिन्न की जा रही

है और तू खड़ा-खड़ा देख रहा है ! बोल, क्या अब भी तेरी अहिंसा तुझे चुपचाप खड़ा रहने को कहती है ?

शिक्षा का कोई आदर न करे, तो यह सहा जा सकता है। जीवन को भी यदि उचित मान न दे, तो यह भी सहा जा सकता है। किन्तु नहीं सहा जा सकता—आर्यत्त्व का अपमान नहीं सहा जा सकता ! जिस यज्ञोपवीत की रक्षा के लिये राज-पूतों का इतिहास रक्त से आप्लावित हो उठा था और अपना सर्वस्व गंवा कर भी धर्मप्राण पूर्वजों ने जिस की रक्षा की थी, क्या उस वेदोपदिष्ट आदर्श के मूर्तरूप यज्ञोपवीत को हम इस प्रकार टूट जाने देंगे !

तन कर खड़े हो गये—हम तलाशी नहीं देंगे ।...

++ और तब उन्हें हार माननी पड़ी—यज्ञोपवीत नहीं तोड़ा जायगा। टूटा हुआ लौटा दिया गया।

सबको एक कोठरी में बंद कर दिया। उन दिनों सर्दी थी—ओढ़ने-बिछाने के लिये केवल तीन कम्बल से कैसे काम चलेगा ? नौ आदमी, तीन कम्बल, क्या ओढ़ें—क्या बिछायें ?

किसी तरह सोये। मन में खुशी थी कि इतनी दूर से जिस काम के लिये आये थे, आज वह पूरा हो गया। अब कोई गुप्तचर हमारे पीछे नहीं है—अब कोई दुविधा नहीं है कि किस तरह उनको धोखा देना होगा—किस तरह हैदराबाद में घुस कर सत्याग्रह कर सकेंगे—इत्यादि। परन्तु केवल एक चिन्ता है और यह चिन्ता ही इतनी भारी बन कर पड़ रही है कि चैन नहीं लेने देती। हमारा एक साथी चन्द्रगुप्त—जो किसी कारण हमारे साथ गिरफ्तार नहीं हो सका—कहां जायेगा ? उसका क्या होगा ?

4 फरवरी। दुपहर को 12 बजे कोठरी में से बाहर निकाला। बीच में एक बार गोलगप्पे के आकार की छोटी-छोटी दो-दो पूरियां भी खाने को दी गई थीं, पर वह पेट के किस कोने में चली गईं, यह बड़ी कोशिश करने के बाद भी नहीं पता लगा।

फिर लारी में बन्द किया—वही संगीन और राइफलें साथ।

नाजिम साहब अभी सो रहे थे। घण्टा-भर से ज्यादा इन्तजार करनी पड़ी। वहीं बैठकर वारण्ट तैयार किये गये। उस से पहले दिन हवालात में रात को बारह बजे उठाकर हमारे बयान लिये गये—हरेक को लगभग दो-दो घण्टे तक अर्थ के सवालों से माथापच्ची करनी पड़ी थी।

फिर सवेरे ही सवेरे एक और साहब आये थे जो हरेक की खास खास निशानियां और शक्ल-सूरत का पूरा हुलिया अंकित करके ले गये थे। अब यहां नाजिम

साहब की कोठी पर फिर वही सब का सब दुहराया गया। फिर झड़ती (खाना तलाशी) ली गई। और जब नाजिम-साहब अपनी दुपहर की नींद समाप्त करके उठे तो उनके सामने पेश किया गया — वारंटों के साथ हम सबको।

जब उन्होंने हमसे सवाल करते उर्दू-ग्रामर के अनुसार शब्दों के बहुवचनों हुए का प्रयोग किया तो हमको अपनी हंसी रोकना मुश्किल हो गया और हम खिलखिला कर हंस पड़े। पीछे खड़ा हुआ सिपाही चिल्लाया—‘शी ! शी’ पर हमारी हंसी रुकने में नहीं आती थी—कोई अफसर होगा तो अपने घर का होगा। हम तो हंसी की बात पर बिना हंसे रह नहीं सकते।

प्रश्नोत्तर के बाद जब उन्हें पता लगा कि ये छात्र उस संस्था से आये हैं जिसके संस्थापक अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द थे, तो उनके कान खड़े हो गये।

पूछा—“जमानत दोगे ?”

“नहीं।”

“माफीनामा लिखोगे !”

“हरगिज नहीं।”

तो उसने चुपचाप हमारे वारण्टों पर लिख दिया —“हिन्दुस्तान के इन बहादुर लड़कों को वाजिब सजा दी जाए।” और अदालत में पेशी की तारीख लगा दी।

हिन्दुस्तान के बहादुर लड़कों को उचित दण्ड देने के लिये ले चले जेल की ओर !

• • •

(६)

चंचलगुडा

चंचलगुडा — हैदराबाद की सेण्ट्रल जेल ।

मुगलकाल के किलों का सा भारी भरकम द्वार । उसमें एक छोटी सी खिड़की । एक एक करके अन्दर घुसे । लम्बा चौड़ा डीलडौल, लम्बी काली दाढ़ी, विचित्र वेश, हथियारों की सी कालिमा—जिसे देख कर भय का सञ्चार हो—ऐसा था पहरेदार । उसने मेघ-गम्भीर स्वर में अपने कर्ण-कटु कर्कश कण्ठ से गिनना शुरू किया—ओकटि, रेण्डु, मूडु, नालगु (एक, दो, तीन, चार) तोम्मदि—पूरे नौ ।

पहले कभी जेल के द्वार के अन्दर की दुनियां को देखने का सौभाग्य नहीं मिला था । हम प्यासी आंखों से ऊपर नीचे, इधर उधर ताकने लगे । दीवारों और छत पर मकड़ी के जाले, सामने के बोर्ड पर एक पंक्ति में बड़े बड़े ताले टंगे हुए—नम्बर लगे थे, ऊपर लिखा था—‘डे लाक्स’ (Day Locks) दूसरी ओर ‘नाईट लाक्स’ (Night Locks) थे । जिस प्रकार आदमियों की इयूटियां बदलती रहती हैं—किसी की दिन में किसी की रात में—उसी प्रकार इन जड़ तत्वों की भी इयूटी बदलती रहती है । अच्छा ही है ! मशीन की तरह मनुष्य से काम लेकर यह युग मनु की सन्तान को जड़ बनाता जा रहा है, तो जड़ चीजें भी पीछे क्यों रहें—वे दिन और रात में अलग अलग इयूटियां बदल कर मनुष्य की तरह काम करेंगी !

कोने में एक ओर, द्वार के पास ही, एक बड़ा सा रजिस्टर । एक आदमी उसमें लगातार कुछ घसीटता जा रहा था । बारी बारी से हमारे और हमारे बालिखों के नाम घसीटे गये ।

और जेल प्रवेश-संस्कार प्रारम्भ हो गया ।

सामने के कमरे में—जो शायद जेलर का कमरा था, हथकड़ियों और डण्डा-वेडियों की प्रदर्शनी सी लगी हुई थी—ऊपर सबसे हलकी-हलकी, फिर क्रमशः भारी और उससे भी और भारी । हरेक को विचित्र भय से देखते देखते जब सबसे भारी डण्डावेड़ी की ओर नजर गई तो सहज-विश्वासी मन भी यह विश्वास नहीं कर सका

कि ये इतनी भारी डन्डाबेड़ियां मनुष्य के पैर में पहनाई जाती होंगी। मनुष्य तो क्या—ये तो शायद पशुओं को भी भारी पड़ें। पर नहीं, हम गलती कर रहे हैं। याद रखना चाहिये कि अब हम एक ऐसी दुनिया में हैं जिसे सभ्य संसार 'जेल' कह कर पुकारता है और जहां दोपाये प्राणी की उतनी भी कीमत नहीं जितनी कि परमात्मा की रची सृष्टि में चौपाये प्राणियों की समझी जाती है।

पास ही रखी हुई थी टिकटिकी—ऊपर हाथ बांधने के लिये उस में दोनों ओर एक एक लोहे का कड़ा और नीचे पैर बांधने के लिये भी दोनों ओर एक एक लोहे का कड़ा तथा बीच में शरीर के मध्यभाग को टिकाने के लिये चमड़े की छोटी सी गद्दी—स्थान स्थान पर खून के धब्बे। पास ही रखी हुई कई दर्जन बेंतें—कुछ तेल में भीगती हुई—सुना तो बहुत बार था, पर अब तक कभी देखा नहीं था। इस सबको देखते ही आंखों के सामने यह दृश्य नाचने लगा—जबकि जेल के अधिकारियों के अन्यायों का अपनी मृदुल वाणी से विरोध करता हुआ कोई सत्याग्रही इसके साथ बांध दिया जायेगा, फिर उसको गंगा कर दिया जायेगा, और कोई जल्लाद संसार की सारी निर्दयता को अपने हाथ की कलाई में भरकर जोर से बेंत को हवा में लहराता हुआ उसके कोमल गुप्त अंग पर...

अब्रह्मण्यम् ! अब्रह्मण्यम् ! स्मरण करते करते ही शरीर में सिर से पैर तक कंपकंपी छा गई।

इस वातावरण में प्रवेश-संस्कार की क्रिया आगे बढ़ी—

एक डेस्क के पास बैठे हुए क्लर्क ने पूछ पूछ कर लिखना शुरू किया—आपका नाम, बाप का नाम, पेशा-अपना और अपने बाप का, आयु, निवास स्थान—इत्यादि। फिर एक एक करके सारे कपड़े निकलवाये—उनको अलग अलग लिखा। हरेक चीज, जिसके पास जो भी कुछ था—कोई कागज का टुकड़ा, कोई पेन्सिल भी नहीं छोड़ी गई। जो ऐनक पहनने वाले थे उनकी ऐनक भी छीन ली गई। वे बिचारे बिना आंखों के हो गये। बहुत कहा कि बिना ऐनक के ये सामने फैलाया हुआ अपना हाथ भी नहीं देख सकते। किन्तु उसका एकदम दो टूक जबाब दिया गया—“हम क्या करें, जेल का कानून नहीं है।” हमें हैरानी हुई कि जेल के कानून भी कैसे कैसे होते हैं?

प्रसंगवश, इतना और कह दू कि जेल में रहते रहते जिन कैदियों को कई साल हो जाते हैं, वे ही पुराने होने के कारण विश्वास पात्र बन जाते हैं और फिर वे ही जमादार, नम्बरदार और पहरेदार के रूप में जेल रूपी मशीनरी के पुर्ज बमकर उस अत्याचार के राज्य को चलाने में सहायक होते हैं। जो कोई कैदी पढ़ा-लिखा होता है, वह क्लर्क आदि का पद पाता है, जो जेल में अति सम्मानास्पद पद समझा जाता है। और फिर वे पद पाये हुए कैदी अपने आपको और कैदियों से ऊंचा समझने

लगते हैं और इधर की उधर और उधर की इधर लगाकर अपनी पोस्ट पक्की किये रहते हैं। उनकी छोटी मोटी सुविधायें भी मिल जाती हैं।

यह कैसा विचित्र मनुष्य का स्वभाव है कि उसको यदि अपने साथियों से कुछ अधिक सुविधायें दे दी जावें तो वह सहर्ष अपने साथियों के ऊपर अत्याचार करने के लिए तैयार हो जाता है। सभ्यता और संस्कृति चाहे कितनी ही उन्नति क्यों न कर लें, पर वह सृष्टि के आदि का गुफावासी मनुष्य मनुष्य के मन में से शायद ही कभी हट पाये।

• • •

इधर से निवृत्त हुए तो दूसरी ओर स्टोर की तरफ ले जाये गए। दरवाजे के सामने ही लोहे की एक अहरन रखी थी। बहुत देर तक अपनी जिज्ञासा को दबाना नहीं पड़ा—एक-एक को बुलाकर बारी-बारी से उस अहरन पर पैर रखवा कर हथौड़े की चोट से भारी-सा लोहे का कड़ा पैर में डाला जाने लगा। हाँ, प्रवेश संस्कार में यह भी एक आवश्यक क्रिया है! एक पैर में यह नया बोझ एकदम अप्रिय-सा लगा। किन्तु जब सबके ही पैरों में वह लोहे का भारी-भारी कड़ा शोभित होने लगा और अन्य भी आते-जाते कैदियों के पैरों में उसी तरह का कड़ा देखा, तो पता लगा कि यह लोहे का कड़ा कैदी का आभूषण है। बिना इस आभूषण के कैदी 'क्वालिफाइड' नहीं होता और जिसके पैर में यह कड़ा जितना ही भारी होता है वह उतना ही शान से अकड़-कर चलता है। इस लोहे के कड़े को धारण करके चलने में मुश्किल पड़ती है और तेजी से नहीं चला जा सकता—भागने की तो फिर बात ही क्या! पर जो जान-बूझकर कैदी होने आये हैं उनको भागकर करना ही क्या था!

पीछे आगे जाकर लगभग दो महीने बाद जब समाचार पत्रों में आन्दोलन मचा और अधिकारियों ने उस आन्दोलन से परेशान होकर हमारे पैरों में से इन लोहे के कड़ों को निकाल डाला, तो एक बार हमारे पैर फिर आभूषण-खून्य हो गए और हमें तब अपने पैर उससे कहीं अधिक हल्के लगने लगे थे जितने कि अब उन कड़ों की पहिने से पहले थे। और विशेष तो कुछ याद नहीं—सिर्फ यह याद है कि उन कड़ों के निकल जाने के बाद उनसे बने हुए घाव बहुत दिनों तक दर्द करते रहे थे।

फिर एक पतला-सा कम्बल दिया गया—काला और फटा हुआ। एक टाट दिया गया—जिसकी चौड़ाई किसी भी हालत में दो बालिश्ट से ज्यादा नहीं थी। बिस्तर तैयार हो गया। कहा गया—अपना-अपना बिस्तर उठाओ। हम बगल में बिस्तर लेकर खड़े हो गए—जैसे कहीं यात्रा के लिए जाने को तैयार हों।

फिर एक लोहे का तसला और एक लोहे का गिलास, जिसको वहाँ की भाषा के अनुसार हम भी 'चम्बू' कहने लगे थे। उसकी आकृति हूबहू वही थी जो च्यवन-प्राशादि दवाइयों के डिब्बों की होती है।

जब पूरे साजोसामान के साथ हम दो-दो की पंक्ति में खड़े हुए, तो चेहरों पर सच्चे सैनिक की मुस्कराहट थी और जब एक सिपाही हमारे आगे और एक हमारे पीछे होकर हमें आगे चलने के लिये कहने लगा तो हम भी एक अजीब मस्ती के साथ मन मन में 'लैपट-राइट' करते हुए आगे बढ़े ।

उस बड़े द्वार को पार किया— सामने सुन्दर सड़क । सड़क के दोनों ओर काल कोठरियां (Solitary Cells), कुछ कोठरियों के द्वार खुले हुये । उनमें बिलबिलाते हुए कैदी । हम जब सामने से गुजरे तो वे अंगुलियों से हमारी ओर इशारे करने लगे । अत्यन्त धीमे काना-फूँसी के से स्वर में उनके मुँह से कुछ प्रश्नवाचक शब्द निकले जिनको हम नहीं समझ पाये ।

अपने-अपने चम्बू में पानी भर कर लाये । फिर सड़क पर ही बैठा दिया गया—एक पार्श्व में बिस्तर और सामने तसला । काली-काली बर्तन पहने हुए दो कैदी आये— बड़ी-बड़ी बाल्टियां और बड़ी-बड़ी कड़छियां । तसले में बारी-बारी से कुछ गोबर-सा लुचलुचा पदार्थ—जो शाक था, और हाथों में बड़े-बड़े काले टिक्कड़ । वह रोटी पता नहीं किस अनाज की थी और शाक भी पता नहीं किस चीज का था । किन्तु शाक में प्याज, लहसन, तेल और मिर्च की भरमार अत्यन्त स्पष्ट थी ।

..... शर्त लगाई कि देखें कौन सबसे अधिक खाता है । नया उत्साह था । बड़े जोश के साथ खाना शुरू किया । भूख भी बड़े जोर की लग रही थी किन्तु हममें से कोई भी हजार कोशिश करने पर भी उस दिन आधी से ज्यादा रोटी नहीं खा सका ।

• • •

भोजन के बाद फिर पंक्ति । अन्धेरा हो चला था । जेल के बाहर पास ही था 'सिग्निलेशन वार्ड' (Segregation ward) उसकी ओर हमें ले गए । करीब आधा फ्लांग जाने के बाद वैसे ही किले का सा भारी भरकम द्वार । खिड़की खुली, अन्दर घुसे, एक भयानक वार्डर ने स्वागत किया । एक दम एक छोटी-सी कोठरी का ताला खोला, उसमें पाँच साथियों को घुसेड़ दिया । उसके साथ की दूसरी कोठरी में बांकी चार । पहले लोहे की मोटी-मोटी सलाखें, फिर जाली, और दीन के पत्तर— ऐसा था कोठरी का कपाट । बन्द होते ही अन्धेरा घुप्प !

टाट बिछाया, सिरहाने पर तकिये की जगह तसला रखा और काला कम्बल ओढ़ कर पड़ गए । जहाँ से कम्बल फट गया था वहाँ से पैर बाहर निकल गए । जूएँ अलग । जो कोठरी एक के लिए थी उसमें पाँच-पाँच । एक कौने में शौच के लिए गमला—दुर्गन्ध । करवट बदलने की भी गुंजाइश नहीं । जिस पैर में कड़ा पड़ा था, उसे कभी दूसरे पैर के ऊपर रखकर, कभी सिकोड़ कर, कभी फँलाकर, तरह-तरह से

कोशिश की कि दर्द न करे—पर वह भारी-भारी जिधर पड़ता था उधर ही दर्द करता था। और फिर लगने लगी सर्दी।

अब तक पुस्तकों में जेलों की कहानियां ही पढ़ी थीं। जेल की वास्तविकता को देखने का अवसर कभी नहीं मिला था। इसीलिए आज हरेक चीज बड़ी रहस्य-पूर्ण लग रही थी—न जाने एक-एक चीज के ऊपर कितना क्या कुछ लिखा जा सकता है!

किन्तु यह तो 'इन्विदा' है। आगे न जाने और क्या-क्या सहना होगा। सारी रात यही सोचते रहे।

और नींद? फटा टाट, फटा कम्बल, पैर का कड़ा, सर्दी और करवट का अनवकाश—इतने सारे शत्रुओं के बीच में खड़ी-खड़ी बिचारी नींद प्रभात की प्रतीक्षा करती रही।

रात की नीरवता में चारों ओर लगातार अपने ही सांस की प्रतिध्वनि सुनाई देती रही।

• • •

(७)

अदालत में

अगले दिन सवेरे जब रोटी खाने के बाद हम अपना तसला चम्बू साफ कर रहे थे और यह कोशिश कर रहे थे कि देखें कि कौन अपना तसला ज्यादा चमकाता है—क्योंकि यह जानते हमें देर नहीं लगी थी कि अपना तसला-चम्बू सब से अधिक चमकदार रखना भी जेल में एक प्रतिद्वन्द्विता की चीज है—उसी समय हमारा बुलावा आया। दो-दो की पंक्ति में [जिसे वहां 'जोड़ी' कहा करते थे], बैठ कर हमें हमारे टिकट बांटे गये। हम समझ गये कि आज अदालत में हमारी पेशी है।

टिकट का मतलब बस या रेल जैसा टिकट मत समझिए। जेल का टिकट इनसे बिल्कुल अलग होता है। लकड़ी का एक छोटा-सा गोल घेरा, गोल तार में लटकता, उस पर कैदी का नम्बर, नाम, वल्लिदयत वगैरह। यह टिकट ही कैदी का 'आइडेंटिटी कार्ड' है।

सिप्रिगेशन वार्ड से निकाल कर पुनः जेल के मुख्य-द्वार के अन्दर धकेले गये । वहाँ हाजिरी हुई—अपने और अपने संरक्षकों के अनहोने नाम सुनने की मिले । क्षितीश चन्द्र को खतीस चन्दर, धीरेन्द्र का 'धीरानन्द', विद्यासागर का दरियासागर और सत्येन्द्र का सत्ता बन्दर । (या तो वे सिपाही काले अक्षर और भेंस में अन्तर नहीं जानते थे, या फिर उर्दू भाषा ही इतनी बाह्यगत है कि उस में लिखो कुछ और पढ़ो कुछ)

लारी आई और उसमें ठूस दिये गये । एक अजीब तमाशा था । एक के ऊपर एक—फिर दो—फिर तीन, और इस प्रकार करते करते उस बीस सवारियों की लारी में पूरे पचास कैदी ठूस दिये गये—मानो कि यह कोई मालगाड़ी का डिब्बा हो जिस में ऊपर से नीचे तक बोरियाँ ठूस कर भरनी हों । ऊपर से तुराँ यह कि दस सिपाही उसमें और बैठाये गये—सशस्त्र । सिपाही सीटों पर बड़े आराम से बैठे और कैदी एक दूसरे के ऊपर लदे हुए सांस लेने के लिये तरसने लगे । वातावरण को और गहरा करने के लिये मोटर के चारों ओर पर्दा लगा दिया गया क्योंकि सहर में से होकर गुजरते समय डर था कि कैदी नारे लगा कर नागरिकों को कहीं उत्तेजित न कर दें ।

अदालत के द्वार के सामने उतरे । जरा साँस लेने का अवकाश मिला । मन ही मन भाग्य नगर के भाग्य पर ईर्ष्या करने लगे जहाँ मनुष्य को पशुओं से भी नीच बन कर रहना पड़ता है और फिर भी यह अधिकार उसको नहीं है कि शिकायत कर सके !

5 फरवरी । दिन भर कठघरे में बन्द रहे और प्रतीक्षा करते रहे कि देखें कब हमारी बारी आती है । कठघरे के अन्दर बाहर चारों ओर उन सिपाहियों की बीड़ी-सिगरेटों की दुर्गन्ध भरी हुई थी, जो कैदियों के नियन्त्रण के लिए पहरा देते हुए बात बात में गालियों की बौछार कर रहें थे । लाचार होकर चुपचाप एक कोने में प्राणायाम का अभ्यास करते हुए सिकुड़े बैठे रहे । एक बार पेशी की नीबत आई तो हाथों में हथकड़ियाँ डालकर पेश किया जाने लगा । किन्तु हम अदालत की पूरी तरह झाँकी भी न लेने पाये थे कि बैरंग वापिस लौटा दिये गये ।

पेशी की तारीख बदल गई ।

• • •

छह फरवरी । अदालत के अन्दर मजिस्ट्रेट के सामने । मजिस्ट्रेट ने यह जान कर कि हम सब विद्यार्थी हैं, अपनी न्यायपरायणता को प्रमाणित करने के लिये पूछा—“क्या आपने हिन्दुस्तान का नक्शा देखा है ?”

“हाँ ।”

“क्या रङ्ग है ?”

“लाल !”

“यदि लड़ना था तो वहीं लाल रंग से क्यों नहीं लड़ें ? लड़ाई तो उसके साथ थी जो ऐरा गैरा नत्थूखैरा तीसरा आदमी हमारे बीच में आ घुसा है। उस लाल रंग को छोड़ कर यहां पीले रंग में लड़ने क्यों आए ? आपस में लड़ने से क्या फायदा ?” मजिस्ट्रेट साहब का इशारा किस ओर था, यह समझते-देर नहीं लगी। उस युग में नक्शे में ब्रिटिश राज्य का रंग लाल और देसी रियासतों का रंग पीला हुआ करता था।

मजिस्ट्रेट साहब के मुख से ऐसी उदारता-पूर्ण, अपूर्व बुद्धिमानी की बात सुन कर आश्चर्य हुआ। लेखक ने उत्तर दिया—

“मजिस्ट्रेट साहब ! आपने बात बड़े पते की कही है। किन्तु यदि आपने थोड़ा-सा ध्यान दिया होता तो शायद आप ऐसा न कहते। इस समय हम उन अधिकारों के लिये लड़ने आये हैं जो किसी भी जाति और किसी भी राष्ट्र के लिये जन्मसिद्ध समझे जाते हैं। यदि वे जन्मसिद्ध अधिकार हमें ब्रिटिश भारत में प्राप्त न होते, तो हम वहां लड़ते। किन्तु जो चीज वहां हमें प्राप्त है, यहां प्राप्त नहीं है। क्या आप नहीं जानते कि हिमालय से कन्या कुमारी तक सारा भारतवर्ष एक देश है, एक राष्ट्र है। उसके किसी एक भाग पर यदि अन्याय और अनीति का ताण्डव होता है तो न केवल हम विद्यार्थियों का, किन्तु आपका और प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है कि वह उसको दूर करे। हैदराबाद की जनता को “नागरिक स्वतंत्रता” प्राप्त नहीं है। यदि आप “स्वतंत्रता” की परिभाषा जानना चाहते हैं तो मैं अमुक(…) प्रोफेसर के शब्दों में कहूंगा कि “प्रेस और वाणी की स्वतंत्रता का ही नाम नागरिक स्वतंत्रता है।” आज हैदराबाद के निवासियों को न तो प्रेस की स्वतंत्रता है और न ही वाणी की। किसी भी नागरिक के ये मूलभूत अधिकार हैं। इनके बिना वह सभ्य नहीं कहला सकता। मत समझिये कि यह साम्प्रदायिक प्रश्न है। यह तो मानवता का प्रश्न है। इसमें पक्षपात की गुंजाइश नहीं हो सकती। यह और बात है कि हैदराबाद की जनता पिछासी प्रतिष्ठत हिन्दू है इसलिये ये सारे अत्याचार हिन्दुओं के ऊपर जाकर पड़ते हैं। किन्तु मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि यदि काश्मीर में या ऐसी ही किसी अन्य रियासत में जिस में अधिकतम आबादी मुसलमानों की होती और वहां यही अत्याचार होते, यदि वहां इसी प्रकार मानवता का अपहरण होता, तो जिस प्रकार हैदराबाद में सबसे पहले सत्याग्रह करने वाला गुरुकुल कांगड़ी का जत्था आया है” उसी प्रकार वहां भी सबसे पहला जत्था गुरुकुल कांगड़ी का ही होना! ... इसी लिये हम उस लाल रंग को छोड़ कर इस पीले रंग से लड़ने आये हैं।”

सारी अदालत में स्तब्धता छा गई। बाहर बहुत भीड़ इकट्ठी हो गई थी और उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी कि इन लड़कों का क्या फैसला होता है। उधर

आंख उठा कर देखा, कोई हिन्दू नजर नहीं आया क्योंकि, सिपाही इतने स्वेच्छाचार से काम लेते थे कि हिन्दुओं को पहले ही द्वार में नहीं घुसने देते थे ।

अमीन साहब ने उठ कर हमारे वारण्ट पेश किये । धारा 126, 122, 15 और 28 के अनुसार हमें गिरफ्तार किया गया था । बयान देते हुए उन्होंने झूठे झूठे अभियोग लगाये कि किस तरह इन्होंने जनता को बरगलाया, उत्तेजित किया, साम्प्रदायिक वैमनस्थ फैलाया और हुकूमत के विरुद्ध गलत अफवाहें उड़ाईं । जब गवाह की आवश्यकता हुई तो यों ही गली में से जिस को किराया देकर लाये थे और एक एक शब्द घुटवा रखा था, उसे हाजिर किया । जब उस से जिरह की गई तो वह दिशा में ताकने लगा और कुछ ऐसी असम्बद्ध बातें कह गया कि उनको सम्बद्ध करना अमीन साहब के लिये भी मुश्किल पड़ गया ।

उन अमीन साहब पर भी हैरानी हो रही थी जो गिरफ्तार करते समय बड़े सम्म्य, क्षिप्ताचार-युक्त और समझदार बन रहे थे । किन्तु अब वही परले सिरे के झूठे के भी कान काटते थे । कोई और गवाह पेश करने की मांग की तो वे एक से अधिक गवाह भी पेश नहीं कर सके ।

मजिस्ट्रेट साहब हम में से प्रत्येक से अलग-अलग बयान लेने लगे । कहा: तुम पर ये अभियोग हैं—जलसा किया, जुलूस निकाला और जनता को भड़काया एवं विद्रोहात्मक पर्चे बाँटे (धारा 126, 122, 15 और 28), इनके उत्तर में कुछ कहना हो तो कहो ।

मैंने अपने सब साथियों की ओर से युक्ति पूर्वक इन अभियोगों की निस्सारता सिद्ध की और कहा कि न तो हमने कोई जुलूस निकाला, न ही जलसा किया और न ही जनता को भड़काया । हाँ, सत्याग्रह बेशक किया है । उसे आप इनमें से कुछ भी समझ लें । यह तो हम पहले ही जानते हैं कि आपके यहां की अदालतें न्याय के नाम पर ढोंग रचती हैं । यहां भी वारण्ट कटते हैं, गवाह पेश किये जाते हैं और जिरह भी होती है, किन्तु परिणाम वही होता है जो पुलिस चाहती है । यहां की पुलिस और न्यायालय दोनों एक हैं । इसलिये न्याय की आशा से और निज को निर्दोष सिद्ध करने के लिये हम कुछ भी नहीं कहना चाहते । कहना चाहते हैं तो केवल इतना कि इस रियासत के पक्षपात पूर्ण कानूनों को बदलने के लिये आर्यसमाज द्वारा लगातार 6 साल तक किये गये प्रयत्नों से निराश होकर आज हम जो कुछ कर सकते थे, हमने किया है । अब हमको विद्रोह और राजद्रोह का दोषी करार देकर आप जो करना चाहते हैं, आप करिये ।

“क्या कोई वकील करना चाहते हो ?” मजिस्ट्रेट साहब ने पूछा ।

“नहीं ।”

“कोई गवाह पेश करना चाहते हैं ?”

“नहीं”। मजिस्ट्रेट साहब ! गवाह तो हम पेश करें कहां से ? क्यों कि इस रियासत में हम अजनबी मेहमान हैं। किसी भी आदमी को हम नहीं जानते। क्योंकि हम तो पहली बार ही इस रियासत में आये हैं। हां, जानते हैं तो केवल एक व्यक्ति को— वे हैं हमारे अमीन साहब, जिन्होंने हमें गिरफ्तार किया है। दुःख यही है कि सारी रियासत में जिस एक माय व्यक्ति को हम जानते हैं, वे अमीन साहब ही उठे पड़े गये हैं और आज झूठ बोलने पर तुले हुए हैं। और वकील हम करें क्यों ? क्यों कि हम हरिद्वार से— इतनी दूर से, जो यहां आये हैं, सो झूठ बोलने के लिये नहीं आये। और क्योंकि हम पढ़े-लिखे कालिज के विद्यार्थी हैं, इसलिये यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि हम किसी के बहकाने से आ गये हैं। जो कुछ हमने किया है, उतना हम स्वयं मानते हैं, जो नहीं किया है, उसे मानेंगे भी नहीं—चाहे कुछ भी कर लीजिये। अब आप जो सजा देना चाहें—दें। हमारा काम समाप्त हो गया।”

चार घण्टे की बहस के बाद 'लञ्च' का समय आ गया। लञ्च के बाद फैंसला सुनाया गया। 28 वीं धारा हटा दी गई, क्योंकि वह हमारे टिकटों पर भी अंकित नहीं थी। केवल अमीन साहब की ताजा सूझ ने एक और अभियोग अदालत में ही लगा दिया था। बाकी हरेक धारा के लिये 6-6 महीने का सख्त कारावास—कुल डेढ़ साल। किन्तु तीनों सजायें इकट्ठी चलेंगी (Concurrently) इसलिए 6 महीने में तीनों सजाएं समाप्त।

हमने तीनों सजाएं एक साथ चलने की व्यवस्था के लिए मजिस्ट्रेट साहब को मन ही मन धन्यवाद दिया। किसी भी विद्यार्थी के लिए शिक्षा का एक साल वर्षादि हो जाना कितना पीड़ादायक होता है, इसे भुक्तभोगी ही जान सकते हैं। हम दुबारा अपनी श्रेणी के विद्यार्थियों में शामिल होकर निचली श्रेणी में बैठने के अपमान से बच गए। पर मैं इस सौभाग्य से भी वंचित था। मेरी श्रेणी के साथी तो एक महीने बाद ही स्नातक परीक्षा देकर अपने अपने घर चले जाने वाले थे। पर मेरे और साथी तो उस अपमान से बच गए। वे सब दुबारा अपनी कक्षाओं में शामिल हो सके।

लौटते समय 50 के बजाय 20 ही कैदी लारी में बैठे। अदालत में मजिस्ट्रेट के सामने जब हमने शिकायत की कि क्या यह भी कोई जेल का कानून है कि 20 सवारियों की लारी में 50 कैदी बिठाए जावें, तब मजिस्ट्रेट ने पुलिस इंसपेक्टर से जबाब-तलब किया। सरकार के खैरखाह पुलिस इंसपेक्टर साहब ने बताया कि यद्यपि सरकार के पास लारियां कई हैं, किन्तु पेट्रोल बहुत ज्यादा खर्च होने के डर से ऐसा किया जाता है। किन्तु पीछे उन्होंने बड़ी मलमनसाहत के साथ स्वीकार कर लिया था कि आदमी की जान की अपेक्षा सरकार का पेट्रोल अधिक महंगा नहीं है।

० ० ०

मि० हालेन्स आये

एक दिन दोपहर को हमें बुलाकर कपड़े दिये गये। अब तक सफेद पोश थे, अब गेरुये पहनने पड़े—श्वेताम्बरों से निकल कर काषायवस्त्र-धारियों की सूची में। 'ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्' के आदर्श का इस तरह जबर्दस्ती पालन करवाया जायेगा, यह आशा नहीं थी।

पोशाक—एक कुर्ता, एक पजामा और एक टोपी।

कुर्ता—किसी की बांह आधी और किसी की पूरी। बटन की जगह गले में घुण्डी, और किसी में वह भी नदारद। कोई स्वयं कुर्ते से बड़ा और किसी से कुर्ता बड़ा।

पजामा—एक टांग ऊंची, एक नीची, चूड़ी वार - इसलिये उसकी परिधि से मोटी टांग उसमें पड़ते ही चर से फट जाये। किन्तु पहनना पड़ेगा वह फटा हुआ ही, क्योंकि नम्बर डल चुका है, इसलिये बदला नहीं जा सकता।

फिर टोपी—कोई तिकोनी, कोई चौकोनी, कोई गोल, कोई लम्बी—कैसी ऊटपटांग।

जब पहला व्यक्ति अपनी 'फुल ड्रैस' पहन कर तैयार होकर खड़ा हुआ तो अनायास ही हंसी मुंह से फूट पड़ी—“वाह भाई वाह ! तू तो पूरा 'हतो' (कश्मीरी कुली) लगता है।”

पर हंसी का अवकाश नहीं था। हंसी उड़ाता भी कौन, और किसकी, क्योंकि ऐसा 'काटून' तो हम में से हरेक को ही बनना था।

थोड़ी दूर जेलर साहब कुर्सी पर बैठे कोई अंग्रेजी का अखबार पढ़ रहे थे। अचानक ही उस पर निगाह जो पड़ी तो एक शीर्षक दिखाई दिया—‘गायकवाड़ एक्स-‘पायर्ड’ (Gayakwar Expired)। देखते ही शरीर में विद्युत् की लहर सी दौड़ गई ‘महाराजा गायकवाड़ मर गये !’ हैं !—हम में कुछ चुपचाप काना-फूसी सी हुई। अरे ! यह तो केवल एक समाचार है। न जाने इस प्रकार के और

भी कितो ही समाचार होंगे जिनसे दुनियां की गति-विधि में नित्य नये नये परिवर्तन आ रहे होंगे । राजनैतिक, सामाजिक और वैयक्तिक—सभी क्षेत्रों से अब हम 'कट ऑफ' हैं । हम नहीं जानते कि दुनियां में क्या हो रहा है हम नितांत अंधेरे में हैं और लगातार 6 मास तक इसी प्रकार हमें अंधेरे में रहना पड़ेगा ।

हे भगवान् ! क्या हमें अखबार पढ़ने का भी अधिकार नहीं ! तो फिर अच्छा होता कि हम तुम्हारी सृष्टि में अनपढ़ ही रह जाते । तब, अखबार को देख-कर कम से कम जी में जलन तो न होती !

अगले दिन दफ्तर में बुलाकर कई घण्टे खड़ा रखा । फिर पैर का, छाती का और सिर का नाप लिया गया । मुझे डर है कि कहीं कोई पाठक पूछ न बैठे कि कई घण्टे खड़ा क्यों रखा गया । क्या इसका भी कोई नाप लेना था कि ये कितने घण्टे खड़े रह सकते हैं ? परन्तु जिस प्रकार पशु घण्टों खड़े रहते हैं और उनके बारे में कोई प्रश्न नहीं करता, ठीक उसी प्रकार कैदी के विषय में किसी भी प्रकार का प्रश्न अनुचित समझा जाना चाहिये । क्योंकि जेल की 'डिक्शनरी' में कैदी और पशु दोनों पर्यायवाची माने जाते हैं— उनके लिये इतनी छोटी बातों की परवाह नहीं की जाती !

फिर एक दिन तोल करने के लिए चिकित्सालय ले जाये गये । रजिस्टर में हरेक का तोल 4 पौण्ड कम लिखा गया । शायद यह भी वहां का दस्तुर ही है । क्योंकि जेल के कष्टों से कैदी कमजोर तो होगा ही, इसलिये पहले से ही 4 पौंड का हाशिया (Margin) रख लिया जाये तो हर्ज ही क्या है !

वहां से लौटते हुए एक साथी ने कम्पाउण्डर साहब को बताया कि उसे जुकाम की शिकायत है । वह कितना आश्चर्यजनक दृश्य था जब कि कम्पाउण्डर ने गिलास में कुनीन मिक्चर डालकर अत्यन्त निष्काम भाव से उसके गले में उड़ेल दी और वह साथी देर तक अपना कड़वा मुंह लिये हमारी हंसी का पात्र बना रहा !

इतने में आ गया अचानक शुक्रवार— परेड का दिन ?

अपना-अपना विस्तर और थाली-चम्बू लेकर हमें बैठा दिया गया—आमने-सामने दो पंक्तियां । जो कम्बल फटे हुए थे उनको वार्डर ने इस प्रकार ढक दिया कि नजर के सामने न आने पावें, और सबको अच्छी तरह समझा दिया कि यदि किसी ने कुछ भी शिकायत की तो उसका भला नहीं होगा । सदर, दरोगा, इन्त-जामी और न जाने कौन कौन—पूरे लश्कर के साथ मोह्तमीम—सुपरिटेण्डेंट साहब आये ।

उस दिन भाई विश्वमित्र को जोर का बुखार आया हुआ था । सोचा कि यदि प्रार्थना की जाये कि डाक्टर आकर बीमार को देख जाय और दवाई दे जाय, तो शायद कोई पाष नहीं होगा । क्योंकि 'सिप्रिमेशन वार्ड' में डाक्टर साहब कभी भूल कर भी नहीं आ सकते थे ।

नम्र शब्दों में प्रार्थना की, तो उसका उत्तर मिला—

“खबरदार ! आगे से कभी ऐसी शिकायत की । तुम्हें क्या पड़ी है ? बीमार है तो रहने दो । मर ही तो जायेगा, और तो कुछ नहीं होगा । ...क्या इसे भी घर समझ रखा है । यह जेल है । दवाई की ही आवश्यकता थी तो यहाँ क्यों आये ?”

ठीक है ! अब हम कैदी हैं, और कैदी को यह अधिकार नहीं है कि वह बीमार होने पर दवाई की आशा कर सके ! ...आखिर वह मर ही तो जायेगा, और तो कुछ नहीं होगा ।

० ० ०

थोड़ी-सी दिनचर्या की भी चर्चा कर दूँ—

सवेरे 6 बजते ही कोठरियों के ताले खुलते थे और हम सब अपनी प्यासी आँखों से सूर्य भगवान् का दर्शन करने के लिये ऐसी उत्सुकता से दौड़ते थे जैसे कि जंगली जानवर अपने शिकार के लिए झपटता है । ... उन्मुक्त गगन के स्वच्छन्द आलोक के निवासी रातभर एक तारे की भी टिमटिमाहट के लिए तरसते जब थक कर सो जाते तो उनकी आँखों के अन्दर-बाहर चारों ओर गम्भीर अन्धकार का ही पर्दा पड़ा होता । कल्पना देवी का साम्राज्य अनायास ही सजग हो उठता और रंग-बिरंगे स्वप्न आकर पलकों पर झूला डालते । बन्दी कभी सोचता स्वजनों के विषय में, कभी देश और जाति और आत्मा और परमात्मा । ...कि इतने में अर्धरात्रि के तीव्र अन्धकार को चीरती हुई पहरेंदार के फौजी बूटों की कर्णकटु टाप उसे अपने कानों के पास कोठरी के द्वार के बाहर सुनाई देती और उसके सारे स्वप्न छिन्न-भिन्न हो जाते । आँखें खुल जातीं...किन्तु वह आँखें खोलकर क्या करता, किसे देखता ? इस घनघोर अन्धकार में चारों ओर से विभीषिकायें अनन्त रूप धारण करके उस के सामने आतीं—वह कहीं तक उपेक्षा करता...वह फिर अपनी आँखें बन्द कर लेता और यह मधुर कल्पना करके आश्वासन पाता कि बाह्य सृष्टि के सारे अन्धकार को मैंने अपने नयन-कपाटों में अवरुद्ध कर लिया है और अब बाहर केवल आलोक ही आलोक शेष रह गया है ! ...

हां, तो सवेरे 6 बजते ही ताला खुलता था—केवल एक घण्टे के लिये । उस एक घण्टे में ही सारे नित्यकर्म करना और पेट की ज्वाला बुझाने के लिये दो दो टिक्कड़—जिनमें कभी रेत, कभी सीमेंट, कभी कंकर और कभी कभी कोड़े-मकोड़े—उदर-दरी में डाल लेना, और ऊपर से चम्बू भर पानी उड़ेल लेना—पानी, जिसमें प्रायः मिट्टी के तेल की बू आती थी ।

और फिर ‘नित्यकर्म’ से आप क्या समझे ? उस वार्ड में एकसी पचास कैदी थे, केवल दो शौचालय—जिनमें आड़ की तो कोई आवश्यकता समझी ही नहीं गई

श्री। बारी बारी से जाते। शौचालय के द्वार पर पंक्ति-बद्ध भीड़ खड़ी होती— कि पहले इसकी बारी है, फिर इसकी, और फिर इसकी—यदि किसी को जरा-सी देर लग जाती तो सिपाही पीछे से डांटता —“जल्दी निकालो।”

इस प्रकार नित्य कर्म के रूप में केवल शौच की ही आज्ञा थी। दातुन-कुल्ला करने, हाथ मुंह धोने या नहाने का तो प्रश्न ही नहीं था। सीधे भोजन के लिये बैठना पड़ता था। ज्योंही घण्टा समाप्त हुआ, त्योंही फिर ताले के अन्दर। यदि हम खुली हवा में थोड़ी देर और सांस ले लेते या यदि धूप थोड़ी देर और हमारे अङ्गों का स्पर्श कर लेती, तो डर था कि कहीं वह हवा और वह धूप भी हमारे सहवास से राजद्रोही न बन जाये !

और फिर यही हिसाब शाम को भी था। तीन बजे विस्तीर्ण गगनमण्डल को और असंख्य स्फूर्तियों के आगार दिङ्मण्डल को अपनी आंखों की कपाटी में बन्द करते—रात्रि के अन्धकारमय पथ के लिये इस प्रकार सम्बल तय्यार होता। और चार बजते-न बजते 'वैताल फिर उसी ढाल पर' बैठा दिया जाता—मूक, निःस्पन्द और अकेला !

दिन भर ?

दिन भर पड़े रहते चुप चाप। कभी कभी लोहे की चद्दर से ढके उन दूढ़ कपाटों के छिद्रों के बीच में से आस-पास की अन्य कोठरियों में पड़े अपने साथियों की ओर झांकते। सिर्फ झांकते ही, क्योंकि बात करना मना था और यदि बात करते पकड़े जाते तो दण्ड मिलता ! जैसे कि उस दिन एक बन्धु का हालचाल पूछते हुए भाई दिवासागर को डबल गंजी (कालकोठरी—मृत्यु दण्ड प्राप्त कैदियों के लिए निर्धारित) में डाल दिया गया था !

जिस प्रकार चुपचाप पड़े हुए लोहे को जंग लग जाता है और वह घिसता चला जाता है, ठीक वही हमारी दशा थी। किसी से बात नहीं कर सकते, पढ़ने को भी कुछ नहीं, कोई काम करने को नहीं दिया गया, सिर्फ चुपचाप पड़े रह सकते हैं। दिन में तो दीवारों के कोनों में किन्हीं भूतपूर्व अभागों अपने ही जैसे कैदियों की अस्पष्ट लिखावट का अर्थ लगाते रहते और रात्रि को उन विभीषिकाओं का भाष्य करते रहते जिनको स्वयं हमारी ही कल्पना अन्धकार-पट पर चित्रित करती रहती।

...ऐसा लगा कि धीरे धीरे पागल होने की नौबत आ रही है।

सिग्नलेशन वार्ड की दीवार के साथ ही लगा हुआ था पागलखाना। जो लोग जेल के कपटों को नहीं सह सके, जिनको सालों तक अलग अकेली कोठरियों में बन्द रहना पड़ा, जो मनुष्य नाम के किसी भी प्राणी की सहायुभूति का स्वप्न भी नहीं ले सके; उनको एकरस वातावरण ने चेतना-शून्य —पागल बना दिया।

कहीं हमारा भी यही भविष्य न हो— इसी से डर कर तो एक दिन लेखा अपने बांडर से काम के लिये लड़ पड़ा था, और जब उसने कोई भी काम देने। इन्कार कर दिया और कहा कि तुम पढ़े-लिखे लोग ऐसा-वैसा काम नहीं कर सकते तो उसने बिना कुछ कहे-सुने चुप चाप कोने में पड़ी हुई झाड़ू उठाई और सारे बा की सफाई करने में लग गया।

इसी तरह आगई शिवरात्रि। उस दिन सबने मिलकर दरखास्त की कि आज हमारा त्यौहार है, इसलिए हमें स्नान करने की अनुमति मिलनी चाहिये, संध्या हवन करने की और उपवास करने की अनुमति मिलनी चाहिये, और साथ ही शाम को फलाहार का प्रबन्ध होना चाहिये।

परिणाम यह हुआ कि दोपहर के बारह बजे प्रत्येक को कोठरी में से बारी बारी से अलग-अलग निकाला गया और पांच-पांच चम्बू पानी नाप कर दिया गया। इस इतने पानी में चाहे तो वह नहा ले, या कपड़े धोले, या कुछ भी करले ! कपड़े वैसे ही पुराने मित्र थे और फिर इतने दिन से नहाना भी नहीं मिला था—सोचिये कि एक महीने के अन्दर जूएँ कितनी भर गई होंगी। फिर पांच चम्बू पानी !

काश ! महीने में एक बार हम पानी की मालिश भी अच्छी तरह का पाते !

० ० ०

भोजन प्रारम्भ करने से पहले हमें मंत्र बोलने का अभ्यास था। इस बुरे (?) अभ्यास के लिये हमें कई बार डांटा गया, डराया-धमकाया गया ! फिर भी येन केन प्रकारेण भोजन की यह पूर्ववर्ती क्रिया जारी ही रही।

एक दिन सवेरे 6 बजे एक कोठरी का ताला जो खुला तो एक सत्याग्रही ध्यान-मग्न अंखि बन्द किये स्पष्ट स्वर से सन्ध्या कर रहा था। सिपाही था मुसलमान, वह और तो कुछ नहीं समझा, उसने ज्योंही ओ३म् का नाम सुना त्योंही दना-दन उसकी पीठ पर ढण्डा बरसाना शुरू कर दिया। यह दृश्य असह्य था। उस दिन निश्चय किया कि आज भूख हड़ताल होगी।

पछि पता लगा कि आज मि० हॉलेन्स—अंग्रेज जनरल इंस्पेक्टर ऑफ पुलिस—आने वाले हैं। जेल का महकमा भी उन्हीं के अधीन था। पहले उन से ही क्यों न निर्णय करवा लिया जावे। नहीं तो, भूख हड़ताल अन्तिम अस्त्र है ही।

कमर में दस्ती (उपना) बंधवाकर हमें पंक्ति में खड़ा कर दिया गया—जैसे कोई खानसामों की पण्टन खड़ी हो।

मि० हॉलेन्स ने आते ही पूछा—“हरिद्वार के लड़के कहां हैं ?”

उन्हें बताया गया। बच्चों को फुसलाने के से ढंग से उन्होंने कहा—

“तुम लोग इतने पढे-लिखे समझदार होकर यहाँ क्यों आये ? क्या तुम्हें अपना बतन प्यारा नहीं है/हरिद्वार तो बहुत सुन्दर जगह है ? अब तुम गंगा में कैसे नहाओगे ?”—और फिर उन्होंने मोहम्मदीय (सुपरिटेण्डेंट) की ओर मुखातिब होकर, हर की पौड़ी का और वहाँ की मछलियों का ऐसा सुन्दर कवित्व-पूर्ण वर्णन किया कि कोई क्या करेगा ! नमकहलाल कुत्ते की तरह सुपरिटेण्डेंट साहब पूँछ हिलाते हुए हाँ में हाँ मिलाते गये । जब पुलिस के जनरल इन्स्पेक्टर साहब को बताया गया कि हम हरिद्वार छोड़कर हैदराबाद क्यों आए हैं और क्यों हमें सत्याग्रह करने की आवश्यकता पड़ी है—तो उन्होंने अपनी भावभंगी से ऐसा दिखाया जैसे कि कुछ सुना ही नहीं ।

और फिर जैसे आये थे वैसे चले गये ।

मि० हॉलेन्स के आने का और कोई प्रभाव हुआ हो या न हुआ हो, किन्तु इतना अवश्य हुआ कि ठगते दिन से ही हरिद्वार के लड़के एक एक करके चञ्चल-गुडा जेल के सिप्रियेशन वार्ड से निकाले जाकर जाने किस किस जेल में जाने लगे !

हॉलेन्स ने आकर खासतौर से गुरुकुल कांगड़ी के सत्याग्रहियों को ही क्यों पूछा, इसका रहस्य भी कई महीने बाद पता लगा ।

० ० ०

(9)

बदरखा

सायंकाल के झुटपुटे में, जब एक सिरे से कोठरियों के ताले बन्द होने शुरू हो गये थे और मैं इस प्रतीक्षा में था कि मेरे बिल के बन्द होने की बारी कब आती है—मेरा नाम और नम्बर पुकारता हुआ एक सिपाही आया, तब मैं सहसा यह अनुमान न लगा सका कि इस समय अपना थाली-चम्मू और टाट-कम्बल लेकर बुलाने का क्या मतलब है ? ठीक उसी दिन मुझ से थोड़ी देर पहले ही इसी प्रकार और दो साथियों को बुलाया गया था । अभी मैं उनके भविष्य के विषय में सोच ही रहा था कि स्वयं मेरी बारी आ गई ।

जेल के बीच में थी एक बड़ी टंकी, उसके चारों ओर थीं चार गैलरियाँ, उन गैलरियों में थीं भयानक कालकोठरियाँ, जिनमें विशेष विशेष कैदियों को रखा जाता था । ऐसी एक कालकोठरी में—जिसे वहाँ ‘सर्कल गंजी’ कहते थे, हमें भी ले गये ।

लोहे की मोटी सलाखों के द्वार में एक छोटी-सी खिड़की खुली—चिड़िया-घर के पिंजरों की सी—और ठीक चिड़िया घर के जानवरों की ही तरह हम उस में घुसेड़ दिये गये। चारों ओर तारकोल से पुती हुई, अपनी कालिमा के कारण रात्रि के अन्धकार को और अधिक भयानक बनाती हुई दीवारें, एक कोने में छोटी भट्टी के आकार का शीचालय—उसकी गन्दगी और बदबू के कारण असंख्य मच्छर और डांस, ठीक बीचों बीच फर्श में जड़ी हुई एक मोटी लोहे की जञ्जीर—जो इस तरह पैरों में बांधी जाती कि कैदी को दिन रात खड़ा ही रहना पड़ता, और खूब ऊँचे एक कोने में एक छोटा-सा रोशनदान—इतना छोटा जितना कि एक ईंट का घेरा।

हम तीनों साथी सोचते रहे कि हम ने ऐसा कौनसा जुर्म कर दिया कि हमको इस प्रकार सबसे अलग करके इस भयानक कोठरी में डाल दिया गया। सोने की कोशिश की—किन्तु वे मच्छर और डांस न जाने कबसे प्रेमालाप के भूखे थे कि हमें देखते ही जबर्दस्ती कान के पास आ आकर ऐसे प्रेम-वर्चा करने लगे जैसे कि कोई बहुत दिनों का बिछुड़ा हुआ मित्र सारी बातें एक साथ ही कह देना चाहता हो।

—अचानक बालों में कुछ सरसराहट-सी।

यह क्या ? हड़बड़ा कर उठे। जब कम्बल में हाथ डालकर उसे पकड़ा और पता लगा कि यह बिच्छू है—तो होश फास्ता।

ऐसी हालत में तो यहां नहीं सोया जा सकता। सारी रात टाट के आसन पर शरीर के चारों ओर कम्बल अच्छी तरह लपेट कर 'या निशा सर्वभूतानां' को वरितार्थ करने वाले योगियों की तरह एक आसन से बैठे रहे और उस इष्टिकापरिमित छोटे से रोशनदान में से झाँकती हुई यामिनी-कामिनी के सुहाग-सिन्दूर की तरह रक्तमय देदीप्यमान एक लघु-तारिका की ओर देखते देखते सबेरा हो गया।

• • •

अगले दिन 18 फरवरी थी।

सवेरे कहा गया—“तुम्हें बदरखा भेजा जायेगा।”

समझ में नहीं आया कि बदरखा कौनसी जगह का नाम है। अब तक तो यह शब्द हमारे कानों से परिचित था नहीं। फिर यह नई बला कौनसी है ?

पीछे पड़ा लगा कि जेल-परिवर्तन, तबादला या 'ट्रांसफर' का ही नाम बदरखा है।

अन्य बैरकों से भी कैदियों को बुलाया गया—अपने कुछ साथियों को उनमें देखकर आँखों को तृप्ति हुई। फिर पच्चीस-पच्चीस की दो टुकड़ियाँ बनाई गईं। पहले पच्चीस को लारी में भर कर निजामाबाद भेज दिया गया।

42/निजाम की जेल में

इससे पहले तीन साथी वारंगल भेजे जा चुके थे। अब 5 और अलग हो गये।

फिर दूसरे पच्चीस में हमारी बारी आई। यह टुकड़ी गुलबर्गा जाने वाली थी। सौभाग्य की बात कि उसमें साठ हम गुरुकुल के ही विद्यार्थी थे।

बीस सवारियों की उस लारी में 25 कैदियों के अतिरिक्त अपनी रायफलें लेकर 12 सिपाही और बैठे और मालगाड़ी के डिब्बे की तरह ऊपर से नीचे तक लद कर ज्यों ज्यों वह लारी रास्ते के साथ-साथ आगे बढ़ती गई, त्यों त्यों रास्ता मुंह-आंखे-नाक कान को लाल मिट्टी के अम्बार का उपहार देता गया। मुख पर कपड़ा डालकर और आंखें मीचकर इस उपहार की स्वीकृति से तो इन्कार किया जा सकता था, किन्तु जब कमी एकदम ऊंचे कमी एकदम नीचे - विषम—पग पग पर बल खाते हुए सर्पाकार पहाड़ी रास्ते के कारण लोगों को उल्टियां आने लगीं, तो इस से बचना मुश्किल हो गया।

—सबसे पहले सिपाहियों ने ही इस शुभ कार्य (?) का श्रीगणेश किया। फिर क्या था—छूत की बीमारी की तरह चारों ओर इसने हाथ साफ करना शुरू किया। ज्यों ज्यों यह हाथ साफ करती जाती त्यों त्यों स्थान मैला होता जाता और उस मालगाड़ी के डिब्बे में परेशानी और बेचैनी बढ़ती जाती—किसी का हाथ खराब हो गया, किसी का पैर, किसी का सिर और किसी की कमर—क्योंकि बोरियों को हिलडुल कर करबट बदलने का तो अवकाश था ही नहीं। अन्त में यह अवस्था हो गई कि जिस प्रकार बाढ़ आ जाने पर एक गरीब किसान उस प्रलय में डूबने से बचने के लिये अपने परिवार को साथ लेकर छप्पर पर बैठ जाता है—ठीक उसी प्रकार लोग ऊपर की सीटों से चिपक कर बैठ गये।

लगातार 6 घण्टे तक बेतहाशा दौड़ने के पश्चात् जब शाम को चार बजे लारी रुकी तो देखा कि लारी गुलबर्गा जेल के 'मेन गेट' के सामने खड़ी है।

• • •

श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी के दर्शन हुए। उनके साथ अब तक यहां लगभग सौ सत्याग्रही 8 नं० की बैरक में थे। यह वार्ड नं० एक था।

शाम को भोजन के पश्चात् बैरक में बन्द होने पर सन्ध्या होती अत्यन्त शान्त स्वर से बैरक से बाहर आवाज जाने की आज्ञा नहीं थी। जो आनन्द वहां उस समय की सन्ध्या में आता था वह न तो पहले कमी आया और न ही कमी आने आने की आशा है।

यहां स्नानादि के लिये भी कोई रुकावट नहीं थी। हमें लगा कि स्वर्ग में 3 आगये हैं। कहीं वे एकान्त काल-कोठरियां—जिनमें हंसना मना, बोलना मना, साथियों से अलग, चुपचाप अकेले पड़े-पड़े किवाड़ों से लगी जाली की पतली पतली तारों को दिन भर गिनते रहो—और रात को न तो वे तारें, न ही नील गगन के ये तारे—कुछ भी गिनने को नहीं !

उस प्रकार की निष्कर्मण्यता शरीर को श्रान्त कर देने वाली कर्मण्यता से कहीं अधिक भयानक थी। वह शून्यता तो दिल-बिमाग-देह तीनों को ही शून्य बना रही थी !.....

अगले दिन सवेरे टिकट देख देख कर काम बांटे गये।

वार्डर जब हमें काम करवाने के लिये एक ओर को लिये चला जा रहा था तो बीच में अकस्मात् जोर की धर्र-धर्र-धर्र की आवाज आई। वार्डर भलामानस था, थोड़ी देर के लिये उसने हमें मुड़कर देखने दिया। वह दृश्य देखा—एक लम्बी बेंच, डेढ़ सौ के करीब मल्ल लंगोटा बांधे, खड़े खड़े दनादन चक्की चला रहे हैं। चोटी से लेकर एड़ी तक पसीने से तर-पसीने के ऊपर आटा—आंख-नाक-कान मुंह सब आटे से भरे। क्या सफेद भूत ! कइयों के हाथों में छाले—किसी के छाले फूट गये तो लहू-लुहान हाथ। हाय ! उस बेचारे की आंखों में आंसू ! किन्तु चक्की फिर भी लगातार चल रही है—पीठ के पीछे बेंच लिये वह वार्डर जो खड़ा है—जरासी देर के लिये चक्की धीमी हुई कि तड़क से पीठ पर एक बिजली-सी तड़प उठेगी ! शाम के चार बजे तक अकेले ही बीस सेर आटा पीस कर देना है। यदि न पीस पाया तो उस दिन रोटी भी न मिलेगी !

क्या हमारे साथ मो यही होगा ?.....मन में एक विद्रोह की भावना आई। नहीं, यह अमानुषिकता है !

० ० ०

उस दिन हम चक्की खाने (सत्याग्रहियों वाले) में तीन सेर से ज्यादा आटा नहीं पीस सके। बाकी 17 सेर ज्वार बोरी पर बैसी ही पड़ी रही। शाम को सुपरिटेण्डेंट साहब के सामने पेश किया गया—शिकायत हुई। पहला दिन समझ कर उन्होंने विशेष कुछ नहीं कहा। हमने निश्चय कर लिया था कि अब तीन सेर से ज्यादा पीसेंगे ही नहीं, चाहे कुछ भी हो जाये !

अगले दिन फिर तीन सेर—फिर शिकायत। डराया धमकाया और छोड़ दिया।

जब तीसरे दिन फिर वही शिकायत पहुंची तो दण्डस्वरूप कोल्हू की मशक्कत दी गई। सबसे कड़ी मशक्कत जेल में यदि कोई है, तो यह कोल्हू है। सिर पर जूआ डाल कर इसे उसी तरह खींचना पड़ता है जैसे कि तेली के घर बैल खींचता है, और उसी तरह दिन भर वृत्ताकार घूमना पड़ता है। एक मिनट के लिये भी रुक नहीं सकते। रुके कि निकलने वाला तेल सूख जाता है, और तिलों को फिर उसी अवस्था में लाने के लिये घण्टे भर और मेहनत करनी पड़ती है।

हमारे लिये इस भयानक दण्ड को सुनकर जितने भी सत्याग्रही उस समय जेल में थे—सब भूख हड़ताल पर उतारू होगये।

परिणाम यह हुआ कि सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि न केवल हमें ही, किन्तु आगे से किसी भी सत्याग्रही को यह दण्ड नहीं दिया जायगा।

और उधर चक्की खाने में तीन सेर का रिकार्ड होगया। तीन सेर से ज्यादा कोई सत्याग्रही पीसता ही नहीं था।

० ० ०

5 मार्च को श्री चाँदकरण शारदा अपने साथ 60 सत्याग्रहियों का जत्था लेकर आये। उनके आने से सब सत्याग्रहियों में एक नया जोश और नई स्फूर्ति का सञ्चार होगया। शारदा जी हर रोज चिकित्सालय में जाते और स्वयं बीमारों की निगरानी रखते। कहीं कोई अन्याय या जबर्दस्ती देखते तो उसका विरोध करते। उनके आने से ही जेल में हवन का भी श्रीगणेश हुआ—सबेरे शाम दोनों समय सामग्री की सुगन्धि से वायुमण्डल ओत प्रोत हो जाता और अधिकारी लोग स्वयं आ आकर देखते कि इस निर्दोष हवन कुण्ड में तो कोई विद्रोह की बात नहीं है। शारदा जी की स्पष्ट-बादिता और अन्याय-असहिष्णुता का ही यह परिणाम हुआ कि अधिकारियों ने उन्हें करीमनगर की छोटी सी एकान्त जेल में भेज दिया—जहाँ वे महीनों तक अकेले कष्ट भोगते रहे।

चक्की से निकाल कर हमें पत्थर कूटने पर लगाया गया। हमसे पहले दिन भर कीमशकत के रूप में 6 घनफुट रोड़ियाँ कूटकर देनी पड़ती थीं। हथौड़ी के साथ साथ 'रिंग पास' की तरह छोटा सा छेला भी मिलता—हरेक रोड़ी का उसमें से गुजर सकना आवश्यक था। यह काम छुड़वा कर जब हमें कोई और काम दिया गया तब तक हम इसमें भी 1 घनफुट का रिकार्ड कायम कर चुके थे।

० ० ०

धीरे धीरे सारे देश में हैदराबाद—सत्याग्रह का नाद गूँज गया। हमने प्रारम्भ में वह जमाना भी देखा था जब किसी दिन कोई एक भी सत्याग्रही गिरफ्तार होकर आता और हम में सम्मिलित होता तो हम खुशी के मारे नाच उठते—ओह! आज तो एक सत्याग्रही और आया है। यदि इस प्रकार रोज कोई न कोई आता रहा तो सफलता बड़ी जल्दी मिल जायेगी। किन्तु पीछे पता लगा कि यह निजाम की रियासत इतनी आसानी से हमारे जन्मसिद्ध अधिकारों को मानने वाली नहीं है।

थोड़े दिन बाद पंजाब-कैसरी लाला खुशहाल चन्द खुर्सेन्द अपने साथ 150 सत्याग्रहियों का जत्था लेकर आये और हमारे सामने वाली पूरी बैरक उनके जत्थे के लिए खाली करदी गई। उस दिन हमारा उत्साह जेल की दीवारों को तोड़ कर निस्सीम गगन में उड़ती हुई प्रबल वात्सा से उलझने को तय्यार हो रहा था—किन्तु अभी उसका अवसर नहीं था।

फिर वह समय भी आया जब श्री महात्मा नारायण स्वामी जी और श्री खुसन्द जी को हमसे अलग करके शहर के बंगले में ठहराया गया। सत्याग्रहियों के अत्यन्त प्रार्थना करने पर सप्ताह में एक बार शुक्रवार के दिन वे हमारे बीच में उपस्थित होते।

फिर वह जमाना भी याद है जब राजगुरु श्री धुरेन्द्रनाथ शास्त्री जी अपना 500 सत्याग्रहियों का जत्था लेकर गुलबर्गी जेल में ही पधारे। रात के 11 बजे जब जेल के मेन-गेट से होकर उनका जत्था अन्दर चौक में आरहा था तो अपनी बैरक के बन्द किवाड़ों के छिद्रों में से हम बारी बारी से झांकते रहे थे कि किस प्रकार दो दो की 'जोड़ी' पूरे आध घण्टे में जाकर दरवाजे के अन्दर घुस पाई थी !

और इस प्रकार ज्यों ज्यों जेल में सत्याग्रहियों की संख्या बढ़ती गई, त्यों त्यों अधिकारियों के लिये प्रबन्ध करना कठिन हो गया। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि 'मशक्कत' भी अपने आप न्यूनतम होती गई। कौन काम ले—और कितने कैदियों से काम ले !

वह ऐसा समय आगया था कि सत्याग्रह का सबसे बड़ा केन्द्र गुलबर्गी ही बन गया था। 1000 से ऊपर सत्याग्रही उस समय गुलबर्गी जेल में विद्यमान थे। नया नया 'कैम्प-जेल' जो तय्यार किया गया था—उसमें भी जगह नहीं बची थी। फिर भी दिन-दिन संख्या बढ़ती ही जाती थी।

इस बाढ़ की निकासी आवश्यक थी। यदि पानी खड़ा रहता तो अधिकारियों को डर था कि कहीं किसी दिन कोई उत्पात न हो जावे। इसलिए उन्होंने शुरू से ही यह नीति रखी थी कि पुराने सत्याग्रहियों को बदरखा भेजते जाते और नयों के लिये जगह खाली करते जाते।

जिस दिन श्री खुशहाल चन्द जी अपना जत्था लेकर आये थे उसके अगले दिन से ही बदरखा शुरू होगया। सबसे पहले गुरुकुल के विद्यार्थियों की बारी आई—क्योंकि सुपरिण्टेण्डेण्ट को कुछ ही दिनों में यह निश्चय हो गया था कि यदि जेल के अन्दर किसी तरह का आन्दोलन होता है तो उसकी जड़ ये छोटे-छोटे लड़के ही होते हैं—जो देखने में तो छोटे हैं किन्तु वैसे आग के गोले हैं।

हम आपस में पूछते—तेरा कौन सी जेल वालों में नाम है ? फिर आपस में ही जबाब देते—

यह न पूछो बबरका किधर जायेंगे।

वो जिधर भेज देंगे उधर जायेंगे ॥

—और इस तरह करते करते अपने राम के सारे साथी चले गये—कोई ओरंगाबाद और कोई निजामाबाद, कोई संगारेड्डी, कोई वारंगल और कोई करीम नगर। बचपन से ही लगातार चौदह साल तक जिन के साथ रहते आये, जिन के साथ

खेले कूदे, पढ़े, और 'हैसे' रोये— वे भ्रातृ-अधिक बन्धु भी अलग हो गये ! कई सत्याग्रही अपने साथियों से अलग होते हुए संसार के सबसे अमूल्य मोती अपनी आँखों से जमीन पर लुढ़का देते । यदि हममें से भी कोई ऐसा अपभ्यय करता तो दुनियां कह उठती—“निराश्रया हन्त ! हता मनस्विता !”

न जाने सुपरिण्डेण्ट साहब ने लेखक को ही इतना भलामानस क्यों समझ लिया कि उसके सब साथियों को तो अन्य जेलों में भेज दिया, किन्तु उसे वहीं रहने दिया । शायद यह इसलिये था कि वह गीता के निष्काम कर्मयोग का अभ्यास कर सके । इसीलिये तो वह ऐसे अवसरों पर “स्थितप्रज्ञस्य का भाषा” इत्यादि श्लोकों को गुनगुनता रहता था ! एक तरह तो अपने सब सहपाठियों से अलग अकेला रह जाने पर मेरे लिए गुलबर्गी ही बदरखा का काम करने लगा । औरों को अलग कर दिया गया, मैं स्वयं औरों से अलग पड़ गया ।

किन्तु अपने इन साथियों के बदरखा जाने से पहले—

० ० ०

अपने साथियों के बदरखा जाने से पहले— एक दिन सुपरिण्डेण्ट साहब ने एक बॉली-बाल के मैच का आयोजन किया—पुलिस-टीम और सत्याग्रहियों के बीच । हमसे आकर कहा कि यदि हार गये तो एक एक महीने के लिये डबलगंजी में डाल दूंगा ।

शुक्रवार—सजावट के लिये सारे ग्राउण्ड में रंग बिरंगी झण्डियां लगाई गईं । सारे अफसर मैच देखाने आये । क्रिमिनल हों या सत्याग्रही — सभी तरह के कैदियों के लिए मैच देखने का प्रबन्ध किया गया ।

पुलिस-टीम में बड़े लम्बे-चौड़े जवान थे । दूसरी ओर मुकाबले में हम गुरुकुल के 6 विद्यार्थी थे । बड़ी घबराहट हो रही थी— आज तीन तीन भार सिर पर थे—पहला गुरुकुल माता का, दूसरा सत्याग्रही का, और तीसरा आर्यसमाज का । यदि हार गये तो तीनों कलंकित हो जायेंगे ।

श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के चरण कमलों का आशीर्वाद लेकर ग्राउंड में घुसे । उस आशीर्वाद का ही प्रताप था कि हम ‘गुरुकुल’ और ‘सत्याग्रही’ और ‘आर्य समाज’, तीनों की शान बचा सकने में समर्थ हुए । विजयोत्सास से सत्याग्रही नाच उठे ।

इस मैच की बड़ी दूर-दूर तक चर्चा हुई । क्योंकि पुलिस टीम वहां की सब से मशहूर टीम थी । आये दिन प्रसिद्ध प्रसिद्ध पाटियों के लिखित चेलेञ्ज हमारे पास आने लगे । पर फिर सांप्रदायिक वैमनस्य के डर से आगे कोई मैच नहीं हो पाया !

० ० ०

फिर—बहुत दिनों बाद—

सायंकाल का समय था। अपनी बैरक में बैठे संध्या-हवन की तय्यारी कर रहे थे। कुछ सत्याग्रही चिकित्सालय में दवाई लेने गये थे। बीच में द्वार-रक्षक ने एक रोगी को दवाई लेने के लिये चिकित्सालय जाने से रोका। कुछ कहा सुनी हो गई।

सिपाही ने रोगी को डण्डा मारा। कुछ सहृदय सत्याग्रहियों ने रोगी का पक्ष लिया। बात बढ़ गई। आस पास के अन्य सिपाही भी वहीं इकट्ठे हो गये। धीरे धीरे वहाँ काफी भीड़ जमा हो गई।

कहने पर भी जब भीड़ तितर भितर नहीं हुई तो खतरे की घण्टी बज गई। (जेल की परिभाषा में इस खतरे की घण्टी को 'पगली' कहा जाता है) पचास-माठ जवान लट्ठ लिये भीड़ पर दूट पड़े। बिजली की तरह क्षणभर में लाठी-चार्ज की खबर सब बैरकों में पहुंच गई। जैसे बैठे थे सब वैसे ही उठ कर दौड़ पड़े। किंतु बाहर चौक में जाने का रास्ता नहीं था—सब दरवाजे एक दम बन्द कर दिये गये थे। आहत जन-शक्ति जाग पड़ी। जोर जोर से नारे लगने लगे। जोश और शोध के मारे लोग आपे में न रहे। कोई-कोई बड़े-बड़े पत्थर उठाकर दरवाजे तोड़ने के लिये चले। उनको आपस में ही रोक लिया गया।

पर, ओह ! वे गमन-भेदी नारे ! —तुफान—आंधी—प्रलय ये सब मिलकर भी इतना कोलाहल न कर पाते !

आसमान की छाती फट जाएगी ! दिशाओं के कान बहरे हो जाएंगे !

...मैं चुपचाप एक कोने में खड़ा अपने मन को तय्यार कर रहा था कि यदि अभी द्वार खुल जावे और वे नृशंस अत्याचारी यहां भी निहत्थों पर लाठीचार्ज करते हुए आवें तो सबसे पहला व्यक्ति मैं होऊंगा जो उनके प्रहारों का सर्वप्रथम शिकार बनूंगा !

किंतु शहीद होने का वह अवसर अन्त तक नहीं आया !

• • •

(१०)

बिखरी यादें

गुलदगी में शुरू-शुरू में बहुत थोड़े सत्याग्रही थे—अंगुलियों पर गिने जाने योग्य । अपने कुछ साथियों के साथ हमारे वहां पहुंचने पर किशोर-मन में कुछ न कुछ घेतानियों की बात आनी स्वाभाविक थी ।

शाम को 4 बजे के लगभग भोजन के समय मोहतभीम [सुपरिंटेंडेंट] साहब मुआयना करने आते । उनके आते ही सब कैदियों को अटेन्शन की मुद्रा में कैदी की फुल ड्रेस में खड़े होकर उन्हें सलामी बजानी पड़ती । दो-तीन दिन बाद ही हमने सलामी देना बन्द कर दिया ।

जेल के अधिकारियों के लिए और स्वयं सत्याग्रहियों के लिए भी यह अन-होनी बात थी । इसी से सुपरिंटेंडेंट ने चक्की और कोल्हू की सजा देने का फैसला किया था ।

पर उस सजा से हमारा मनोबल टूटने के बजाय और बढ़ गया और अन्त में वह सजा वापिस लेनी पड़ी ।

तब दूसरा कदम हमने यह उठाया कि सुपरिंटेंडेंट के आने पर हम गले में टिकट नहीं लटकाएंगे । यह टिकट एक गोल तार में लगा होता और वह तार कैदी को गले में माला की तरह धारण करना होता । टिकट पर कैदी का नाम, नम्बर और सजा की अवधि तथा सजा की धाराएं लिखी होतीं । यह 'फुल ड्रेस' का अनिवार्य हिस्सा था ताकि जेल का सर्वोच्च अधिकारी कैदी के सामने पहुंचते ही उस टिकट को देखकर उसके बारे में आवश्यक बातें जान सके और उसी हैसियत से उससे बात कर सके ।

जिस तरह कुत्तों के गले में उनका मालिक पट्टा बांध देता है, उसी तरह यह गुलामी का तौक था । हमने कहा : इसे हम गले में नहीं डालेंगे, अपने हाथ में रखेंगे—सुपरिंटेंडेंट जब कहेंगे, उन्हें दिखा देंगे ।

सुपरिंटेंडेंट इससे भी बहुत आगबबूला हुआ । उसने हमारा एक दिन का खाना बन्द कर दिया । अगले दिन फिर वही बात । बल्कि कुछ अन्य नौजवानों ने भी हमारे साथ सहानुभूति में खाना लेने से इन्कार कर दिया ।

उसके बाद गले में टिकट लटकाने की परम्परा अनिवार्य नहीं रही ।

फिर उसके कुछ दिन बाद हमने कहा कि भोजन करते समय सिर पर टोपी नहीं पहनेंगे — वैसा करना हमारे धार्मिक नियमों के विपरीत है । 'धार्मिक नियम' के नाम से सुपरिटेण्डेंट को यहां भी हमारी मांग के आगे झुकना पड़ा ।

दो-तीन दिन बाद ही हमने एक और बखेड़ा खड़ा कर दिया । हमने कहा कि भोजन से पहले मन्त्र बोलना हमारी धार्मिक परम्परा है और हम सब ब्रह्माचारियों ने एक साथ 'ओम् अन्नपते अन्नस्य नो धेहि०' मन्त्र बोलना शुरू कर दिया । सुपरिटेण्डेंट के आदेश से सिपाही डण्डे लेकर लपके और जिस जिस के मुख से मन्त्र की आवाज निकलती उस उसकी पीठ पर डण्डा जमा देते । दो-तीन दिन तक यही क्रम चलता रहा । पर हम टस से मस नहीं हुए । बल्कि जिन सत्याग्रहियों को मन्त्र नहीं आता था, उन्हें भी हमने मन्त्र याद करवा दिया और उसके बाद वे भी डरते डरते हमारा साथ देने लगे ।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि सुपरिटेण्डेंट ने रोज रोज अपनी अवज्ञा होते देखकर शाम को आना ही बन्द कर दिया । उसने सोचा कि सारी शरारत की जड़ ये 'गुरुकुलिये' हैं, इनको झकट्टा रहने देना ही गड़बड़ का कारण है । इसलिए फिर एक एक करके बदरखा (स्थानान्तरण) शुरू हो गया ।

गुरुकुल के मेरे सब साथी अन्य जेलों में भेजे दिये गए । मैं गुलबर्गा में ही बना रहा । परन्तु गुरुकुलियों की उस प्रारम्भिक हिम्मत का ही परिणाम था कि आगे आने वाले किसी भी सत्याग्रही के लिए उन पाबन्दियों पर जोर नहीं दिया गया जो शुरू शुरू में हमें भुगतनी पड़ी थीं ।

० ० ०

अप्रैल के महीने में आगई रामनवमी ।

तब तक दूसरे सर्वाधिकारी श्री चांदकरण शारदा का जत्था जेल में आ चुका था । हम पहले वार्ड में थे, उनके जत्थे को तीसरे वार्ड में रखा गया था । चांदकरण शारदा के आने के बाद ही जेल में हवन करने की छूट मिली । शारदा जी डट गए — कि मैं तो बिना हवन किये भोजन नहीं करूंगा । जेल के अधिकारियों को उनकी दृढ़ता के आगे झुकना पड़ा ।

उनकी देखादेखी हमने भी अपने वार्ड में हवन करना प्रारम्भ कर दिया । वार्डर लोग पहले तो झल्लाए, उन्हें लगा कि कहीं ये हवन के नाम से आग जला कर किसी दिन सारी बैरक को ही न फूंक दें । पर जब दो-तीन दिन तक उन्होंने अच्छी तरह देख लिया कि हवन से ऐसी किसी खुराफात का अन्देशा नहीं है, तो उन्होंने झल्लाना छोड़ दिया । मन्त्रों को तो वार्डर समझ नहीं पाते थे, पर हवन के बाद जब ईश्वर प्रार्थना और यज्ञरूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए का भजन

गया जाता, तो उन्हें भी अच्छा लगता और वे बड़े ध्यान से दूर खड़े खड़े सारा दृश्य देखा करते ।

रामनवमी जब आई तो शारदा जी ने जेल के अधिकारियों से कहा—“यह हमारा पवित्र त्यौहार है । इस दिन हम सब सत्याग्रही प्रातःकाल स्नान करके हवन करेंगे । यदि उस दिन हम सब सत्याग्रही एक साथ ही एक स्थान पर बैठ कर भोजन कर सकें, तो हम सबको बड़ी प्रसन्नता होगी । साथ ही यह भी कि सब सत्याग्रहियों को उस दिन भोजन के समय दो दो लड्डू परोसे जाएं, जिसका खर्च मैं उठाऊंगा ?”

जेल के अधिकारी शिक्षके । उन्हें आशंका थी कि ये सब सत्याग्रही इकट्ठे हो जाएंगे तो कहीं कोई शरारत न कर बैठें । और कुछ नहीं, तो नारे लगाकर आसमान तो सिर पर उठा ही सकते हैं । पर जब नारायण स्वामी जी और शारदा जी दोनों ने उन्हें पूरी तरह आश्वस्त कर दिया कि किसी तरह की कोई अशान्ति नहीं होगी, तो जेल के अधिकारी तैयार हो गए ।

निश्चय हुआ कि सब सत्याग्रही दोपहर को भोजन के समय हमारे वाले (नारायण स्वामी जी वाले) बार्ड में एकत्र होंगे, वहीं सबको एक साथ भोजन परोसा जाएगा । साथ में नुक्ती के दो दो सड्डू भी ।

सत्याग्रहियों की तो खुशी का ठिकाना नहीं रहा ।

जेल सुपरिटेन्डेंट के इस रख परिवर्तन में नारायण स्वामी थे जी की साधुता बहुत बड़ा कारण थी । पुराना अक्खड़ सुपरिटेन्डेंट बदला जा चुका था । उसके स्थान पर यह नया सुपरिटेन्डेंट आया था । उसे तुर्की टोपी पहने देखकर हम समझते थे कि यह मुसलमान है । पर बाद में पता लगा कि हिंदू है । फिर तुर्की टोपी क्यों ? यह रियासत की सरकारी पोशाक थी । हरेक सरकारी कर्मचारी को—चाहे वह हिंदू ही हो—उस समय तुर्की टोपी पहनना लाजिमी था । इस नए सुपरिटेन्डेंट ने जब नारायण स्वामी जी का मृदुल व्यवहार, किसी के प्रति कोई कटुता का लेश नहीं, सीधी-साफ-सच्ची-नरम वाणी और सब सत्याग्रहियों द्वारा उनके प्रति श्रद्धा और अनुवर्तिता का भाव देखा, तो वह उनके प्रति मन ही मन श्रद्धा करने लगा ।

नारायण स्वामी जी की एक विशेषता यह थी कि वे अपनी ओर से जेल के प्रत्येक कायदे-कानून का पूरी तरह पालन करते थे । अपने लिए उन्होंने कभी किसी विशेष व्यवहार की मांग नहीं की और न ही कभी किसी बात की शिकायत की । उनका कहना था कि सत्याग्रही का अर्थ है—सब कष्टों को बिना किसी प्रतिवाद के सहन करना । नया सुपरिटेन्डेंट उनकी इस साधुता से इतना प्रभावित था कि कभी कभी अपने बच्चों को जेल में लाता और स्वामी जी से उन्हें आशीर्वाद देने की प्रार्थना करता ।

सत्याग्रहियों की संख्या मुश्किल से दो सौ के लगभग होगी । सब सत्याग्रही हमारे बार्ड में एकत्र हुए । सब पंक्तिबद्ध बैठे गए । भोजन परोसा जाने लगा ।

सब सुपरिंटेंडेंट अपने लाव-लश्कर के साथ आया। जहाँ नारायण स्वामी जी १२३ शारदा जी बैठे थे उनके पास ही खड़े होकर उसने सब सत्याग्रहियों को सम्बोधित करते हुए कहा— 'जब मुझे पता लगा कि आज आप लोगों का पवित्र त्यौहार है, तो देखिए, त्यौहार के योग्य मैंने भी आप सबके लिए कैसी सुन्दर व्यवस्था की है। आप सबको यहाँ एक स्थान पर एकत्रित होने का अवसर दिया है। और साथ ही आपके लिए लड्डुओं की व्यवस्था की है। आप लोग नाहक ही जेल के नियमों को तोड़ने की कोशिश करते हैं। आखिर जेल जेल है, कोई घर या सराय थोड़े ही है।'

मुझ मन ही उसकी बात चुभी। तभी मन में एक शरारत सूझी।

ज्यों ही वह अपनी बात खत्म करके जाने की सोचने लगा, तभी मैं उसके सामने जाकर खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर बड़ी विनम्रता से बोला— 'हमारा सौभाग्य है कि आज त्यौहार के दिन आप हमारे बीच उपस्थित हुए। आज आप हमारे मेहमान हैं। हमारे पास आप के आतिथ्य के लिए और कुछ तो है नहीं, सिर्फ यही है और यह आपकी खिदमत में हाजिर है'—यह कहकर मैंने अपना तसला जिसमें दाल थी, और जेल की दोनों रोटियाँ उसके सामने रख दीं।

वह हैरान।

शायद मन ही मन उसने 'गुरुकुलिया' (वह मुझे इसी नाम से बुलाता था) की खतानी भाँप ली हो। पर बचने का रास्ता नहीं था। यदि वह उसे अस्वीकार करता तो सब सत्याग्रहियों का अपमान होता। स्वीकार करे, तो किस मुँह से। कैदी की रोटी! जेल का सबसे बड़ा अधिकारी! कैसे खाये! सो भी कैदियों के साथ बैठकर! फिर उसमें और कैदियों में क्या फर्क रह जाएगा?

सब उत्सुकता-पूर्वक सोचने लगे—देखें सुपरिंटेंडेंट अब क्या करता है!

वह वहीं बैठ गया। उसके सामने जेल का तसला और जेल की रोटियाँ! कैसा अद्भुत दृश्य था!

आखिर उसने सिपाहियों से कहा— 'जाओ, मेरे घर से खाना ले आओ। आज हम भी यहीं खाना खायेंगे।'

सब सत्याग्रहियों ने खुशी से ताली बजाई।

उसका खाना वहीं आगया।

पर वह भी कम चतुर नहीं था।

भोजन के बाद उसने फिर एक बार सब सत्याग्रहियों को सम्बोधित किया— 'आप लोग जेल की दाल और रोटी की शिकायत किया करते हैं। आज मैंने स्वयं जेल की दाल और रोटी खाकर देखी है। रोटी में कहीं सीमेंट और रेत नहीं है। दाल में भी मुझे तो कोई खराबी नजर नहीं आई। दाल और रोटी दोनों ठीक

हैं। पर यह मत भूलिये कि यह जेल है।”

उसके बाद सब सत्याग्रहियों ने मुझे घेर लिया—‘अरे ! तूने तो गजब कर दिया।”

नारायण स्वामी जी ने अपने पास बुलाकर मन्द मन्द मुसकाते हुए पीठ पर हल्का सा धौल जमाया।

शारदा जी ने गले लगा लिया।

• • •

एक दिन किसी नए सत्याग्रही ने जेल में आते ही बताया—‘जेल में गुरुकुल के लड़कों को बेंते लगी हैं।”

मैंने विचलित होकर पूछा—‘तुम्हें कैसे मालूम?’

उसने कहा—‘मैंने स्वयं अखबार में समाचार पढ़ा है। इस समाचार के कारण जनता में बहुत उत्तेजना है।”

फिर एक दिन पंजाब से आए एक सत्याग्रही ने कहा—‘मैंने स्वयं श्री पं० बुद्ध-देव विद्यालंकार का व्याख्यान सुना है। वे जब अपनी अद्भुत वक्तृत्व शैली में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को बेंते लगने का रोमांचक वर्णन करते हैं तो श्रोताओं की आंखों में आंसू आ जाते हैं। इतना अत्याचार ! लड़कों को बेंते !

मैंने नारायण स्वामी जी को बताया। वे भी अन्दर से हिल गए। मैंने कहा—‘हो न हो, मेरे ही साथियों को, जो अन्य जेलों में भेज दिए गए हैं—बेंते लगी होंगी ! पर इस बात की पुष्टि कैसे हो ?

स्वामी जी ने कहा—‘चिट्ठी लिखकर देखो।’

मैंने कहा—‘चिट्ठी कौन पहुंचने देगा ? फिर ऐसी चिट्ठी का जवाब भी कौन देने देगा ?’

‘हां, यह तो है।’—स्वामी जी बोले।

‘फिर?’

इस फिर का कोई उत्तर नहीं था। स्वामी जी तो स्थितप्रज्ञ थे। हो सकता है, राग-द्वेष से विमुक्त, चतुर्थाश्रमी संन्यासी को रात को नींद आ गई हो। पर मुझे रात भर नींद नहीं आई। बेचैनी लगातार बढ़ती रही और अपनी विवशता पर गुस्सा आता रहा।

फिर एक दिन एक नया सत्याग्रही आया। वह किसी तरह अपने साथ कपड़ों में छिपाकर एक अखबार की कतरन भी ले आया। वह ‘दिग्बजय’ अखबार था जो उन दिनों शोलापुर से निकला करता था। सत्याग्रह सम्बन्धी समाचारों को आम जनता तक पहुंचाने के लिए वह समाचार-पत्र निकाला गया था।

उसने गुरुकुल के लड़कों को बेंतें लगाने की बात दुहराई। मैंने फिर पूछा—
'प्रमाण ?'

उसने 'दिग्विजय' अखबार की वह कतरन दिखाई जिसमें यह समाचार छपा था। समाचार पढ़ा, तो उसमें बेंतें लगने वालों में प्रमुख रूप से मेरा नाम।

मैं चौंका।

फिर खुशी से उछल पड़ा।

जिनको बेंतें लगी हैं उनमें मेरा नाम भी शामिल है। और मुझे बेंतें लगी नहीं हैं। इसलिए यह बाकी सारा समाचार भी गलत होना चाहिए।

मैं दौड़ा-दौड़ा नारायण स्वामी जी के पास गया और उनसे कहा—'स्वामी जी ! गुरुकुल के लड़कों को बेंतें लगाने का समाचार गलत है।'

उन्होंने पूछा 'कैसे जाना ? कोई चिट्ठी आई है क्या ?'

मैंने कहा—'नहीं, चिट्ठी नहीं आई। 'दिग्विजय' की कतरन मिली है। उसमें जिन लड़कों को बेंतें लगाने का समाचार है, उनमें मेरा नाम भी है। मैं तो आपके सामने खड़ा ही हूँ। मुझे बेंतें नहीं लगीं। इसी से मैं अन्दाजा लगाता हूँ कि मेरे और साथियों को भी बेंतें नहीं लगी होंगी।'

स्वामी जी ने आश्चर्य होकर कहा—'फिर यह समाचार कैसा कैसे ?'

मैंने कहा—'इसका रहस्य मैं बताता हूँ। हम जब चंचलगुडा (हैदराबाद) जेल में थे तब वहाँ रामचन्द्र राव नाम के एक लड़के को बेंतें लगी थीं। यह बात हमें भी हैदराबाद में रहते तक पता नहीं थी। जिस रामचन्द्र राव को बेंतें लगी थीं, वह अब अपना क्षत-विक्षत शरीर लिये इसी गुलबर्गा जेल में विद्यमान है। उसे हमारे बार्ड से काफी दूर किसी दूसरे बार्ड में रखा गया है। उस बार्ड से आने वाले सत्याग्रहियों ने मुझे बताया है।'

'फिर रहस्य क्या है ?'—स्वामी जी ने पूछा।

'रहस्य यही है कि जब रामचन्द्र राव को बेंतें लगीं, तब हम चंचलगुडा में गिरफ्तार होकर नए नए गए थे। हैदराबाद की जनता इस बात से परिचित थी ही, क्योंकि हमारे जत्थे ने वहीं सत्याग्रह करके गिरफ्तारी दी थी। (उसके बाद रियासत से बाहर के किसी जत्थे को हैदराबाद में नहीं पहुंचने दिया गया।) इसलिए ज्यों ही बेंतें लगाने की बात किसी तरह छल कर जेल के सीलखों के बाहर पहुंची तो लोगों ने कल्पना कर ली कि हो न हो, गुरुकुल के लड़कों को ही बेंतें लगी हैं। वहाँ से उड़ती उड़ती यह खबर सारे देश में फैल गई।'

मैं कहता गया—'और स्वामी जी ! अब मुझे यह भी समझ में आ रहा है कि अंग्रेज पुलिस इन्स्पेक्टर-जनरल मि० हालेन्स क्यों गुरुकुल कांगड़ी के लड़कों को पूछता हुआ चंचलगुडा के सिग्निफेशन बार्ड में आया था। और उससे अगले दिन हां

क्यों उसने हमारे जत्थे को छिन्न-भिन्न करके अलग-अलग टुकड़ियों में अन्य जेलों में भेजने का आदेश दिया था।”

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को बेंतें लगने का समाचार पहुंचते ही गुरुकुल के तत्कालीन मुख्याधिष्ठाता श्री पं० सत्यन्रत जी सिद्धांतालंकार ने वायसराय से लेकर महात्मा गांधी तक बड़े सरकारी अधिकारियों और बड़े नेताओं को तार भेज भेज कर प्रोटेस्ट की धूम मचा दी। अंग्रेज पुलिस इन्स्पेक्टर-जनरल मि० हालेन्स के पास भी तार पहुंचा तो वह परेशान हुआ। क्योंकि वही हैदराबाद की जेलों का भी सबसे बड़ा अधिकारी था और उसके आर्डर के बिना किसी कैदी को बेंतें नहीं लग सकती थीं। उसने चंचलगुड़ा जेल के उस सिमिगेशन वार्ड में आकर स्वयं अपनी आंखों से देखकर तसल्ली कर लेनी चाही कि असलियत क्या है—ताकि मौका पड़ने पर अपनी सफाई पेश कर सके। जब उसने देख लिया कि गुरुकुल के लड़कों को बेंतें नहीं लगीं, तब उसने सोचा कि यह गलत खबर बाहर कैसे उड़ी। वह स्वयं अपने मन में इस परिणाम पर पहुंचा कि हो न हो, इन शरारती लड़कों ने ही यह खबर बाहर पहुंचाई होगी। इसलिए इनको तोड़ तोड़ कर ‘बदरखा’ (तबा-दला) करो। यह था बदरखा का रहस्य।

• • •

भारत की आजादी के इतिहास में दो किशोर उल्लेखनीय हैं—एक चन्द्र-शेखर और दूसरा रामचन्द्र राव बन्दे मातरम्। इन दोनों को 16-17 वर्ष की आयु में बेंतों की मार सहनी पड़ी थी।

बेंतों की मार कैसी होती है? पूछो मत। कैदी को मंगा करके पेट के बल टिक-टिकी से बांध दिया जाता है। फिर जल्लाद पूरे जोर से नंगे नितम्ब पर बेंत का प्रहार करता है। कैदी दर्द के मारे बिलबिला उठता है। दो तीन बेंतों के बाद ही एक-एक प्रहार पर मांस का लोथड़ा बेंत के साथ चिपक कर आने लगता है। आदमी लहलुहान हो जाता है। जब वह दर्द को बर्दाश्त न कर सकने के कारण बेहोश हो जाता है तो बेंतें लगाना बन्द कर दिया जाता है। उसकी मरहम पट्टी की जाती है। ठीक हो जाने पर बाकी बेंतें लगाई जाती हैं, तब तक, जब तक जितनी बेंतों की सजा मिली हो, वह पूरी न हो जाए। यह सब सुन कर ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यदि मैं गलती नहीं करता तो 30 बेंतों की सजा ‘सजाये मौत’ के बराबर मानी जाती है। बिरला ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो 10 बेंतें लगने तक बेहोश न हो जाए। चंचलगुड़ा जेल में प्रवेश के समय मेन गेट के पास वाली कठरी में तेल में भीगती इन बेंतों का उल्लेख कर ही चुका हूं।

चन्द्रशेखर की विशेषता यह थी कि जेल में जब उससे पूछा गया कि तुम्हारा नाम क्या है, तब उसने जबाब दिया—

‘आजाद।’

‘बाप का नाम?’

‘आजाद।’

‘रहता कहां है?’

‘आजादपुर’

‘जिला?’

‘इन्कलाब’।

उस किशोर की इस धृष्टता पर ही उसे बेंतों की सजा दी गई थी।

पर बाहरे वीर! उधर बेंत लगती, इधर मुख से निकलता—‘इन्कलाब जिन्दाबाद’। चन्द्रशेखर प्रत्येक बेंत के साथ ‘इन्कलाब जिन्दाबाद’ का नारा तब तक लगाता रहा जब तक वह लहलुहान होकर बेहोश नहीं हो गया। बाद में इसी कारण उसका नाम ‘आजाद’ पड़ गया और वह भगतसिंह, सुखदेव, विस्मिल आदि क्रान्तिकारियों का नेता बना।

सार्वदेशिक सभा द्वारा सत्याग्रह शुरू किए जाने से पहले रियासत की कांग्रेस ने, हिन्दू महासभा ने और स्वयं रियासत के आर्यसमाजियों ने सत्याग्रह शुरू कर दिया था। सार्वदेशिक सभा द्वारा सत्याग्रह की घोषणा के कुछ ही दिन बाद महात्मा गांधी के कहने से स्टेट कांग्रेस ने अपना सत्याग्रह बन्द कर दिया था। हिन्दू महासभा और आर्यसमाज का सत्याग्रह जारी रहा।

रामचन्द्र भी हिन्दू महासभा की ओर से सत्याग्रह में शामिल होकर हमसे पहले गिरफ्तार होकर जेल में पहुंच चुका था। जेल में जब वह बात-बात में वन्दे मातरम् का नारा लगाने से नहीं चूका तो स्वयं हालेन्स ने ही उसे सीधा करने के लिए बेंतों की सजा दी। ‘वन्देमातरम्’ का नारा लगाने पर हैदराबाद रियासत की उस्मानिया यूनिवर्सिटी से 100 विद्यार्थियों को निकाल दिया गया था। वहीं विद्यार्थी नागपुर यूनिवर्सिटी में दाखिल हो गए थे। हमारे गुरुकुल वाले जत्थे को पहले पुलिस वालों ने नागपुर यूनिवर्सिटी के ही छात्र समझा था क्योंकि हम नागपुर-वर्धा वाले रेलवे कूट से ही हैदराबाद पहुंचे थे।

‘वन्देमातरम्’ के लिए रामचन्द्र ने अपनी 16-17 वर्ष की कोमल आयु में जो कुर्बानी दी, वह बेमिसाल है। उसे जितने जोर से बेंतें लगतीं, वह उतने जोर से बोलता ‘व...न्दे...मा...त...र...म्’ और यह सिलसिला तब तक चलता रहा जब तक वह बेहोश नहीं हो गया।

उसी रामचन्द्र को, हिन्दू महासभा के अनन्य नेता, तीन तीन जन्मों की सजा पाये, अमर क्रांतिकारी, वीर विनायक दामोदर सावरकर ने सार्वजनिक रूप से स्वागतार्थ भाल्यार्पण करके ‘वन्देमातरम्’ का खिताब दिया था और उस किशोर से कहा था—‘तूने अपने लहू से वन्देमातरम् के उद्घोष को इस मुस्लिम रियासत की छाती पर इस तरह अंकित कर दिया है कि अब यह निशान कभी मिट नहीं सकता।’ उसके बाद से ही रामचन्द्र के साथ ‘वन्देमातरम्’ शब्द इस तरह जुड़ गया जैसे उसका वही असली नाम हो और रामचन्द्र केवल उपनाम हो।

हैदराबाद के लोग लोग आज उस व्यक्ति को ‘रामचन्द्र राव वन्देमातरम्’ के नाम से ही जानते हैं।

• • •

एक दिन ग्वालियर का 15 सत्याग्रहियों का एक जत्था आया। सब नौजवान थे। उन्हें मशकत के तौर पर रोड़ी कूटने का काम दिया गया। पहले तीन घनफुट रोड़ी शाम तक कूट कर देने का नियम था। तीन घनफुट पूरी न होने पर सजा मिल सकती थी। पर इस जत्थे के आने तक तीन घनफुट की बात तो समाप्त हो चुकी थी, बस इतना नियम रह गया था कि रोड़ी कूटते रहो, शाम तक जितनी हो जाए उतनी वार्डर को सम्मिलवा दो।

सत्याग्रहियों के अनघड़ हाथ रोड़ी कूटते तो प्रायः रोड़ी पकड़ने वाली अंगुलियों पर हथौड़ी पड़ जाती और अंगुलियां कुचल जातीं। इसलिए शुरू से ही अंगुलियों पर पट्टी बाँध कर रोड़ी कूटनी होती। फिर भी अंगुलियों को हथौड़ी की मार से बचाया नहीं जा सकता था। कलम पकड़ने वाले हाथ रोड़ी कूटने की कला क्या जानें !

इस जत्थे के लोगों ने जब अपने एक दो साथियों की अंगुलियां आहत देखीं तो उन्होंने इस मशकत को भी मनोरंजन का रूप दे दिया। सब एक साथ हथौड़ियों को पत्थर पर मारते और संगीत की लय और ताल के साथ 'जो बोले सो अमय, वैदिक धर्म की जय' के नारे को गीत के रूप में गाने लगते। हथौड़ी की एक एक चोट पर जब उन सत्याग्रहियों ने यह गीत गाना शुरू किया तो रोड़ी कूटने का सारा दर्द जाता रहा और हथौड़ी एक नया वाद्ययंत्र बन गयी।

संगीत की इस लहर से सबके चेहरे खिल उठे। समवेत स्वर की सम्मिलित आवाज जब मस्ती में और ऊँची होकर वार्डर के कानों तक पहुँची, तो वह धबरा कर दौड़ा दौड़ा आया कि यह नारेबाजी क्यों हो रही है। पर नारे-बाजी कहाँ ? वहाँ तो संगीत-सम्मेलन था। संगीत में जब मस्ती जुड़ जाए तब उसकी रंगत ही कुछ और होती है।

वार्डर धबरा गया। उसने सोचा कि इस नारेबाजी को सुनकर अगर कहीं जेलर या कोई और बड़ा अधिकारी आ धमका, तो मेरी खैर नहीं।

वार्डर प्रत्येक सत्याग्रही के पास जा जाकर हाथ जोड़ने लगा — "बाबा, मुझ पर रहम करो। भले ही एक भी रोड़ी मत कूटो, पर यह शोर मत करो और हथौड़ियाँ मत तोड़ो। नहीं तो, आप लोगों का कुछ नहीं बिगड़ेगा, मुझे पता नहीं क्या सजा मुगतनी पड़ेगी।"

यह क्या हो गया। जो वार्डर पहले कैदियों के लिए यम का दूत बना हुआ था, बात बात पर गालियाँ देता था, डांटता था, अब वह कैदियों के सामने हाथ जोड़े खड़ा है और दया की भीख माँग रहा है—कि मुझे बचा लो, नहीं तो मैं बेमौत मारा जाऊँगा।

यह घटना यह बताने के लिए काफी है कि जब सत्याग्रहियों की संख्या निरन्तर बढ़ने लगी, तो जेल के अधिकारियों के लिए किसी भी प्रकार की सख्ती बरतना

कितना मुश्किल हो गया। इसलिए जेल के नियमों के पालन के नाम पर जितनी भी सख्तियां हो सकती थीं, वे शुरू-शुरू के कुछ जत्थों को तो भोगनी पड़ीं, परन्तु बाद के जत्थों को उन सख्तियों से वास्ता नहीं पड़ा। पहले सत्याग्रहियों को जेल के अधिकारियों की दया पर जीना पड़ता था। फिर धीरे धीरे ऐसी स्थिति आगई कि जेल के अधिकारी सत्याग्रहियों की दया पर जीने लगे।

प्रारम्भ में, जब सत्याग्रही बहुत थोड़े थे, तब एक दिन हमने जेलर और सुपरिटेण्डेंट से मांग की थी कि जेल का खाना बहुत रद्दी है, जितना राशन हरेक कैदी के लिए जेल के नियमों के अनुसार तय है, उतना राशन नाप कर हमें दे दिया जाए, हम स्वयं अपना भोजन तैयार करेंगे। हमने आपस में ड्यूटियां भी बांट ली थीं कि खाना पकाने के इस अभियान में कौन क्या ड्यूटी सम्मालेगा। स्वयं सत्याग्रहियों में भी इस प्रस्ताव से एक नये उत्साह का संचार हुआ। चलो, एक शुगल रहेगा। जेल की नीरस दिनचर्या में कुछ तो रस आएगा।

पर जेल के अधिकारियों ने हमारी मांग को निमंमतापूर्वक ठुकरा दिया और कहा कि जेल का ऐसा कोई कानून नहीं है कि कैदी को अपना खाना खुद बनाने का अधिकार दिया जाए।

आखिर जेल के अधिकारी और खाना बनाने वाले कर्मचारी खुद भी तो अपना हिस्सा कैदियों को मिलने वाले राशन में से ही निकालते हैं। अच्छा सामान अपने लिए रख लेते हैं और बचा-खुचा रद्दी सामान सत्याग्रहियों के लिए।

बात वहीं खतम हो गई।

धीरे धीरे गुलबर्गा सत्याग्रहियों का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया। जत्थे पर जत्थे आने लगे। दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें सर्वाधिकारियों तक के जत्थे गिर-फ्तार होकर गुलबर्गा जेल में ही आए। जेल के सारे वार्ड भर गए। किसी भी वार्ड में जगह नहीं बची। कांटेदार तार लगाकर एक कैम्प जेल बनाई गई। सब वार्डों के भर जाने पर इस कैम्प जेल में सत्याग्रहियों को रखा जाने लगा। सिर पर छाया के नाम पर एक टिन शेड। इसी के नीचे कैदियों का सामान अपना-अपना, टाट, कम्बल, तसला और चम्बू (टीन का भिलास)। गर्मियों की कड़ी धूप में सत्याग्रही दिन भर तपते और रात को वहीं जमीन पर पड़ कर सो जाते। गर्मियों का मौसम पूरी तरह आ चुका था, इसलिए दिन के बजाय रात की प्रतीक्षा सब सत्याग्रही बड़ी बेताबी से करते। क्यों कि रात में ही शरीर और मन को कुछ राहत मिलती।

पर भोजन ?

यों कैम्प जेल में रात और दिन का गुजारा तो किसी तरह हो जाता, पर बिना भोजन के तो एक दिन भी जीना मुश्किल।

मुझे याद है कि जब राजगुरु धुरेंद्र शास्त्री 500 सत्याग्रहियों का जत्था लेकर

गुलबर्गा में आए तो इतने सत्याग्रहियों को देखकर जेल के अधिकारियों के हाथ-पांव फूल गए। इतने सत्याग्रहियों के लिए भोजन और पानी की व्यवस्था कैसे करें। उन्हें कल्पना नहीं थी कि सत्याग्रह इतना व्यापक रूप धारण कर लेगा और सत्याग्रही इतनी अधिक संख्या में आने लगेंगे।

राजगुरु धुरेंद्रशास्त्री (बाद में स्वामी ध्रुवानन्द जी) का जत्था आने से पहले तक गुलबर्गा जेल के अधिकारी किसी तरह व्यवस्था करते रहे। पर इस जत्थे के आने पर उनकी सारी व्यवस्थाएं फेल हो गई। वास्तव में इसी जत्थे के लिए तुरन्त-फुरत कैम्प जेल तैयार की गई थी। इस कैम्प जेल के बाड़ों में 500 सत्याग्रहियों को किसी तरह ठूस तो दिया, पर गर्मियों के मौसम में नहाने के लिए इतना पानी कहाँ से आवे? किसी तरह बिना नहाए रह भी जाएं, पर पीने का पानी? और भोजन? वह तो जुटाना ही पड़ेगा। आखिर सत्याग्रही हैं तो क्या भूखे प्यासे मरने के लिए जेल में आए हैं?

जो भोजन सवेरे 8 बजे मिलना चाहिए था, वह कहीं शाम को 4 बजे तक मिल पाता और शाम का भोजन तैयार करने में सारी रात बीत जाती और तब कहीं सवेरे जाकर मिल पाता। दाल-साग तो पानी झोंक कर बढ़ाया जा सकता था, पर जेल के नियमानुसार हरेक कैदी को दो-दो रोटियां, कच्ची-पक्की किसी भी तरह की, तैयार करके तो देनी ही पड़तीं। वही उनसे नहीं हो पा रहा था।

तभी एक दिन सुपरिंटेंडेंट ने 'गुरुकुलिया' को बुलाया। मैंने समझा, पता नहीं क्या बात है, क्यों बुलाया है?

सुपरिंटेंडेंट ने कहा—“एक बार तुम लोगों ने मांग की थी न, कि सत्याग्रहियों की गिनती के हिसाब से उनका राशन हमें दे दिया जाए, हम अपना खाना खुद बनाए थे। अब तुम्हारी वह मांग मानने को हम तैयार हैं। अपने लोगों को इस काम के लिए तैयार करो।”

हम पहले बाड़ों में थे। इसी तरह के 5 बाड़ों और थे। उनके बाद कैम्प जेल बनाई गई थी जिसमें इन नए सत्याग्रहियों को रखा गया था। जेल के अधिकारियों की ओर से पूरा प्रयत्न होता था कि अलग अलग बाड़ों के कैदियों को आपस में न मिलने दिया जाए। फिर भी समाचार तो छन छन कर पहुंचते ही थे।

कैम्प जेल के सत्याग्रहियों के भोजन को लेकर जेल के अधिकारियों को कैसी मुश्किल का सामना करना पड़ रहा है, इसका आभास हम तक भी पहुंच चुका था।

मैंने जेल के उस सर्वोच्च अधिकारी से विनम्रता-पूर्वक कहा—“श्रीमन् ! हम सत्याग्रही हैं, अपने धार्मिक और नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के उद्देश्य से सत्याग्रह करके जेल में आए हैं, यहाँ खाना बनाने के लिए नहीं आए। सत्याग्रहियों को खाना देना आपका काम है, हमारा नहीं।”

सुपरिंटेंडेंट के चेहरे पर छाई विवशता देखने योग्य थी !

• • •

जिस व्यक्ति ने बाघ को डंडे से मार कर 'बाघमारे' की उपाधि पाई थी, वह सचमुच नर-व्याघ्र था। शेषराव के साथ 'बाघमारे' इसीलिए जुड़ गया था। क्या अद्भुत शरीर-सम्पदा उन्होंने पाई थी! उनकी बड़ी बड़ी मूंछें, जिमनास्टिक और व्यायाम से सधा हुआ शरीर, ऊँचा डील-डील, दूर से लगता था कि जंगल के राजा की तरह कोई मनुष्यों का राजा चला आ रहा है।

व्यक्तित्व इतना दबंग होते हुए भी हृदय इतना कोमल और स्वभाव इतना मिलनसार कि जब तक साथ रहो, लगातार किसी न किसी बात पर हँसते रहो। हँसाने की कला में निपुणता और निश्छल हँसी दोनों प्रभु की देन हैं।

उन्से अपनी पटरी खूब बैठती। वे भी खाली समय पाते ही पास आकर बैठ जाते और जेल के नीरस वातावरण में सरसता धोल देते।

एक दिन मैंने देखा कि दिन भर इतना मस्त रहने वाला और चारों तरफ मस्ती बिखेरने वाला व्यक्ति शाम को चार बजे के आसपास कुछ उदास हो जाता है और एक कोने में जाकर चुपचाप पड़ जाता है।

दो-तीन दिन तक लगातार यह बात माकं की, तो मन में शंका हुई कि कहीं घर की तो कोई याद नहीं सता रही। कहीं नई नई साथी हुई हो और घर में नव-वधू तड़प रही हो, जेल में ये स्वयं तड़प रहे हों। यह तड़प तो यौवन का धर्म है।

पर पूछने की हिम्मत नहीं हुई। मुझे याद है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसी मठ की गद्दी के मठाधीश एक युवा साधु भी जोश में आकर सत्याग्रह करके जेल में आ गए थे। मैंने एक दिन एकांत में उन्हें आँखों से आँसू बहाते देखा था।

कारण पूछा, तो चुप। जितना आंसुओं को रोकने की कोशिश करते, उतना ही आँखें धोखा दे देतीं।

मैंने समझा कि शायद जेल का कष्टमय जीवन इनसे सहन नहीं होता। मठा-धीश हैं, तो खूब ठाठबाट और ऐशो-इशरत में रहते होंगे। कहां वह ऐश्वर्यमय जीवन कहाँ यह जेल का कठोर जीवन! पर अब तो जेल के नियमों के अनुसार जितनी भी सक्तियाँ हो सकती थीं, वे सब भी शिथिल हो चुकी हैं। अब जेल जेल नहीं, गुरुकुलों के ब्रह्मचर्याश्रम बन गए हैं। ब्रह्मचर्याश्रमों की ही तरह नियमित दिनचर्या, प्रातः सायं सन्ध्याहवन और दिन भर श्रम की उपासना। बिना श्रम के आश्रम कैसा! फिर ये इतने परेशान क्यों हैं। कहीं कोई बीमारी है? कहीं शरीर में दर्द है? कहीं चलते-फिरते गिर पड़े हैं और चोट लग गई है?

सहानुभूति प्रकट करते हुए मैं बार बार पूछता रहा। वे कुछ न बतावें। मैंने जोर देकर कहा—आप को यहाँ कोई भी कष्ट हो, तो बताइए। हम सब साथी मित्र कर आपके कष्ट का निवारण करेंगे। आपकी सब प्रकार की सहायता करने में हम कुछ उठा नहीं रखेंगे।

60/निजाम की जेल में

अन्त में वे बिह्वल हो गए। आँसू भरी आँखों को नीचे करके कहने लगे—
 “अपनी चेली याद आती है। उसका बियोग सहन नहीं होता।”

एक दिन पता लगा कि वे माँफी मांग कर जेल से चले गए। कितना दुर्ब-
 मनीय होता है काम-ज्वर का ज्वार !

मैं शेषराव जी की बात कह रहा था। मेरे कुछ अन्य साथियों ने भी शाम के
 समय अचानक बाघमारे के उदास हो जाने की बात नोट की। ऐसा हंसमुख और
 खोटपोट कर देने वाला व्यक्ति और वह उदास ! जरूर कोई न कोई विशेष कारण
 होना चाहिए।

एक दिन मैंने पूछने की हिम्मत कर ही डाली। वे कुछ न बताएँ। मैं भी
 पीछे पड़ गया। अपनी सौगन्ध ही दिला डाली। तब धीरे से उन्होंने कहा—“इस
 समय भूख के भारे हाल बेहाल हो जाता है, इसलिए मैं एकांत में आकर पड़
 जाता हूँ।”

तब रहस्य समझ में आया। हरेक कैदी को मिलती तो दो ही रोटियाँ थीं,
 चाहे, उसका डीलडौल कितना ही क्यों न हो। जिन दो रोटियों से हमारे जैसे छटकी
 भर के लोग तृप्त हो जाते, वे दो रोटियाँ इस नर-शार्दूल के पेट के किस कोने में
 बिना जाती होंगी, यह कौन जाने। हिरण की और हाथी की खुराक की मात्रा एक
 समान थोड़ी हो सकती है ? पर शेषराव किसी से कुछ कह भी नहीं सकते थे।

मैंने अपने साथियों से कहा कि कल से हम अपनी चौथाई रोटी बचा कर
 रखेंगे और वह शाम को चार बजे इनको भेंट करेंगे।

शेषराव जी पहले लेने में संकोच करते रहे। पर अन्त में तैयार हो गए।

शाम को अकस्मात् उनकी वह उदासी भी बन्द हो गई।

• • •

हमसे पहले स्टेट कांग्रेस के कुछ सत्याग्रही गिरफ्तार होकर गुलबर्गा जेल
 में आए थे। उनमें में एक प्रोफेसर भी थे। अत्यन्त शालीन, विनम्र और
 मृदुभाषी। उनको मशकत के तौर पर दरी बुनने का काम दिया गया था। वे
 गलीचेनुमा डिजाइनदार दरी बुना करते। मैं कभी-कभी उनके पास खड़ा होकर
 उनकी कारीगरी बड़ी उत्सुकता से देखा करता। सोचता, क्या कभी ऐसी कारीगरी
 की मशकत मुझे भी मिल सकती है।

कुछ दिन बाद गुलबर्गा से उन प्रोफेसर का तबादला हो गया। तब जेलर से
 मैंने कहा कि यह दरी बुनने का काम मुझे दे दिया जाए। आखिर वह काम किसी न
 किसी को तो देना ही था। मैं ही क्या बुरा था ! जेलर मान गया।

सारे वाडें में डिजाइनदार दरी बुनने वाला अकेला मैं ही था। अन्य जिनको
 भी खड़ी की बुनाई वाली मशकत मिलती, वे सादी दरी, सादा खेस, या निवार बुनते।

प्रोफेसर साहब उस दरी का शुरु का बार्डर और आगे जमीन की थोड़ी सी ही बुनाई कर पाए थे ।

इस दरी का बार्डर आम के पत्तों जैसे गहरे हरे रंग का और जमीन हरी घास जैसे हल्के हरे रंग की थी । चारों कोनों पर चार गुलाबी फूल थे जिनकी पत्तियां जामुनी रंग की थीं और बीच का केसर पीले रंग का था । बीचों बीच इसी रंग और डिजाइन का एक बड़ा सारा फूल था । बीच बीच में इन्हीं दो रंगों की छोटी छोटी बुंदकियां थीं । अपने श्रेम का यह सुन्दर फल देखकर उस दरी के प्रति मेरे मन में भी मोह उत्पन्न हो गया । मैंने जेलर से अनुमति लेकर उस पर अपने नाम 'क्षितीशचन्द्र' का अंग्रेजी में संक्षिप्त रूप 'K.C.' काढ़ लिया था और जिस सन् में वह बनाई गई थी वह सन् 1939 भी कढ़ाई में ही बुन लिया था । दरी पूरी हो जाने पर मैंने अपना नाम लिख कर जेल के माल खाने में जमा करवा दी थी और जेलर से कह दिया था कि जेल से छूटने के बाद मैं इस दरी को खरीद लूंगा ।

कारागृह से छूटने के बाद घर पहुंच कर मैंने जेलर को इस विषय में चिट्ठी लिखी । जेलर ने बी. पी. पार्सल करके दरी मुझे भेज दी ।

उस समय बी पी छुड़ाई के केवल 10 रु. लगे थे (जो अब लगभग 50 साल बाद उससे कई गुना बैठते) । जब मैंने दरी बुनी थी, तब मैं कैदी था, और जब खरीदी, तब गुलाम भारत का एक आजाद (कारामुक्त) नागरिक था ।

जेल की वह सुन्दर कलापूर्ण श्रमाजित यादगार लगभग बीस वर्ष तक मेरी सेवा करती रही । उसके बाद वह भी, आदमी की तरह, काल की सहज गति को प्राप्त हो गई ।

निजाम की जेल का नाम जवान पर आते ही मुझे वह जेल की चिरसंगिनी दरी याद आए बिना नहीं रहती है ।

नारायण स्वामी जी को चर्खे पर सूत कातने या सूत अटेरने की मशक्कत दी गई थी । अन्य भी जो वृद्ध सत्याग्रही थे उन्हें प्रायः चर्खा चलाने की ही मशक्कत दी जाती थी ।

मेरे वाली दरी अपने रंग-बिरंगे डिजाइन के कारण दूर से गलीचे का भ्रम पैदा करती । इसलिए जो भी नया सत्याग्रही आता वह एक बार तो ठिठक कर मेरे पास खड़ा हो ही जाता और ललचाई नजरों से मेरी कारीगरी देखता रहता । शायद कुछ नवागन्तुक सत्याग्रहियों से परिचय का कारण तो मेरा यह दरी बुनना ही रहा ।

एक दिन एक व्यक्ति मेरे पास आकर बैठ गया । पहले तो वह देखता रहा, फिर उसने बात करनी शुरू की । खोद खोद कर पूछने लगा—क्या नाम है, पिता का क्या नाम है, कहां रहते हैं, कहां से आए हैं, कितनी सजा हुई है—वगैरह वगैरह । मुझे मन में शंका हुई कि कहीं कोई सी. आई. डी. का आदमी न हो और मुझसे

सत्याग्रहियों के कुछ भेद जानना चाहता हो। मैंने उसके प्रश्नों का उत्तर देना बन्द कर दिया।

शायद वह भी समझ गया। कहने लगा—‘आप अपने बतन के हैं, इसीलिए आपसे यह सब पूछ रहा हूँ।’

‘अपना बतन ? सो कैसे ?’

‘आपने बताया न कि आप हरिद्वार से आए हैं और गुरुकुल कांगड़ी में पढ़ते हैं। मैं भी हिन्दू हूँ और मुरादाबाद का रहने वाला हूँ। मैंने भी गुरुकुल कांगड़ी का नाम सुना है। मुझे बताइए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।’

मेरे मन की शंका गई नहीं। मैंने फिर पूछा—‘तुम कैदी तो हो नहीं, क्योंकि तुम्हारी ड्रेस कैदियों वाली नहीं है। फिर तुम्हें जेल के अन्दर कैसे आने दिया गया ?’

बोला - ‘मैं तो भंगी हूँ, आप लोगों का मैला उठाने रोज आता हूँ।

थोड़ा ठहर कर फिर बोला—‘मेरे लायक कोई सेवा बताइए।’

उसके प्रति मेरे मन की वितृष्णा गई नहीं थी। मैंने पूछा ‘तुम सत्याग्रहियों की क्या सेवा कर सकते हो ?’

उसने कहा—‘और तो क्या, आप लोगों को कोई चिट्ठी-चपाठी भेजनी हो तो मैं बाहर ले जा सकता हूँ।’

अब उसके सी. आई. डी. होने का सन्देह और बढ़ गया। जरूर यह हमारी चिट्ठियां ले जाकर जेल के अधिकारियों को दे देगा और यों सत्याग्रह तथा सत्याग्रहियों के सम्बन्ध में जेल के अधिकारियों तक भेद पहुंच जाएंगे।

मैंने उसकी और कलाई खोलने की गरज से पूछा—‘तुम चिट्ठियां बाहर कैसे ले जाओगे ? गेट पर तो बुरी तरह झड़ती’ (खाना तलाशी) होती है।’

बोला—‘मेरी झड़ती नहीं होती।’

‘क्यों, वार्डरों से कुछ सांठगांठ है क्या ?—’ इसमें भी मेरे मन का व्यंग छिपा था।

‘नहीं, सांठगांठ कुछ नहीं। मेरा काम ही ऐसा है कि मुझे कोई हाथ नहीं लगाता। भंगी हूँ न।’

‘फिर चिट्ठी कैसे ले जाओगे ?’

उसने धीरे से कहा—‘चिट्ठी रखूंगा सिर की पगड़ी के नीचे और पगड़ी के ऊपर होगा मैले का कनस्तर। मेरी कोई क्या तलाशी लेगा ?’

तब उसकी सचाई पर तो मुझे विश्वास हो गया, पर उस तरह बाहर चिट्ठी भेजने को मन नहीं माना। न जाने कैसी एक संस्कार-जन्य घिन-सी उसके प्रति मन में उभर आई। मैला उठाने वाले हाथ मेरी चिट्ठी छूएँ—असम्भव !

मैंने कहा—‘माफ करो भाई, फिलहाल तो ऐसी कोई सेवा नहीं है।’

उस समय 'ऐसी सेवा' न होने का एक कारण और भी था। शुरू में सत्याग्रही की जो रूपरेखा मन में थी उसमें यह भाव भी शामिल था कि जब बाहर की दुनियाँ से सब प्रकार के सम्बन्धों का स्वेच्छा से बिच्छेद करके आए हैं, तो जेल से बाहर की दुनियाँ से चोरी-छिपे सम्बन्ध रखने की भी क्या तुक है? जेल के नियमों के उल्लंघन के अलावा यह तपस्या में बिघ्न भी तो है।

फिर जेल में कागज-कलम-दवात पा सकता क्या इतना आसान है! जो लोग ये चीजें छुटा पाते हैं, पता नहीं वे कैसे जुगाड़ करते हैं। पर यह काम अपने राम के बस का नहीं।

जेल में किशोर, युवा और प्रौढ़ अवस्था के लोगों को भी जरा जरा-सी बात के लिए वार्डरों की खुशामद और चिरी-चिरी करते देखा है। देखा है कि किस प्रकार, बीड़ी-पीने के आदी लोग वार्डरों द्वारा पीकर फेंकी गई झूठी बीड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों के लिए कुत्तों की तरह आपस में लड़ते थे।

अभी तक जेल के अधिकारियों के मन में शुरू के हम सत्याग्रहियों के प्रति जो आदर और सम्भ्रम है, क्या वह ऐसी किसी हरकत से हवा नहां हो जाएगा?

वह भंगी अपना-सा मुंह लेकर चला गया।

० ० ०

कुछ महीने बाद। अचानक एक दिन डाकुओं के वार्ड में जाने का अवसर मिला।

यह डाकुओं का वार्ड भी क्या था—जेल का स्वर्ग था। कोई चीज ऐसी नहीं, जो उन डाकुओं के लिए सुलभ न हो। उनके इशारे भर की देर होती और वार्डर स्वयं भय के मारे उनके लिए वही चीज प्रस्तुत कर देते। उनके कपड़े और कैदियों से अच्छे, उनका खाना और कैदियों से अच्छा—रोज गेहूं की चुपड़ी हुई रोटी जिसे जेल में बमनो (ब्राह्मणी) कहा जाता था और जो अन्य कैदियों के लिए केवल बीमार होने पर ही सुलभ थी, दालशाक सब बढ़िया। तेल भी, साबुन भी। और हां गुड़ भी—जो जेल में देव-दुर्लभ पदार्थ से कम नहीं होता।

उनकी मशकत—जो कड़ी से कड़ी हो सकती थी—सो भी क्या, केवल लम्बे-चौड़े गलीचे बुनना। गलीचे की कीमत दस हजार से कम किसी हालत में नहीं।

वे डाकू खूंखार इतने कि किसी किसी को तो तीन तीन सौ साल की सजा मिली हुई थी। तीन सौ साल की सजा?—विश्वास नहीं होता न! हमें भी नहीं हुआ था। पर बताया गया कि इतनी हत्याओं और लूटमार के जुर्म उन पर आयद हैं कि कुल मिलकर सजा की मियाद तीन सौ साल तक पहुंच जाती है।

क्या वे तीन सौ साल तक जीएंगे भी? न जीएँ। पर जब तक जीएँगे, जेल

के अन्दर ही रहेंगे। आजन्म कारावास की अवधि वालों की सजा भी बीस वर्ष की मानी जाती है और प्रत्येक महीने में मिलने वाली छूट के दिनों को काट कर वह सजा भी 14 साल की रह जाती है। इन डाकुओं को चौदह वर्ष के बाद भी जेल से बाहर जाने का अवसर कभी नहीं आया।

डील-डौल, कद-कठी तथा कारनामों के कारण ये डाकू चाहे जितने खूँखार लगें, पर व्यवहार में इतने सीधे और इतने मस्त कि उनकी मस्ती को देखकर किसी को भी रस्क हो। उनको किसी की दया नहीं चाहिए। अब भी जब मौका लगेगा, ये जेल की दीवार तोड़ कर भाग जाएंगे। ये 'सिर उतार भुईं धरे' वाले लोग हैं। जिसने अपना सिर सदा हथेली पर रखा है, उसे कैसा डर? इनको किसी का डर नहीं, इनसे सबको डर। इसलिए उनकी आंख के इशारे पर सब चीजें हाजिर। क्या मजाल जो कोई बड़े से बड़ा जेल का अधिकारी भी उनकी और आंख तरेर कर देख सके। अगले दिन उस अधिकारी की आंख नहीं, या वह अधिकारी नहीं। वे डाकू जेल के कैदी नहीं, जेल के राजा थे। उनके वार्ड में सुपरिटेण्डेंट कभी नहीं जाता था।

जितनी देर डाकुओं के वार्ड में रहे, बड़ा अच्छा लगा। लगा कि उनके अन्दर दयुवृत्ति के साथ साथ कहीं मानवता भी गहरी जड़ जमाए बैठी है।

जब उनके वार्ड से आने लगे तो वे बोले—'हम लोग तो पापी हैं, अपराधी हैं। आप लोग धर्म की रक्षा के लिए जेल में आए हैं। आप लोगों के दर्शन करके हमें भी कुछ तो पुण्य लाभ होगा। किसी चीज की जरूरत हो, तो बताइए।

मैंने दबी जबान से कहा—'कागज, कलम, स्याही हो तो दीजिए।'

उन्होंने तुरन्त सब चीजें हाजिर कर दीं। फिर पूछा—'इन्हें ले कैसे जाएंगे ?

मैंने कहा—'हां, यह तो समस्या है। गेट पर वार्डर तलाशी लेगा ही। पकड़े गए, तो बुरा होगा।'

फिर वे स्वयं बोले—'चिंता न करें। आप जाएं।' फिर गेट पर खड़े वार्डर की ओर आंख का इशारा किया। हम गेट से निकले तो वार्डर ने जान-बूझ कर मुंह फेर लिया, जैसे हमें देखा ही नहीं।

• • •

दक्षिण भारत में उत्तर भारत की अपेक्षा गर्मी और बरसात का मौसम आधा महीना पहले शुरू हो जाता है।

जून जाते जाते गर्मी के मौसम का स्थान बरसात ने ले लिया। पर सत्याग्रहियों की आवाक में कोई कमी कहीं। दिन दूनी रात चौगुनी संख्या में वृद्धि होती गई। सत्याग्रहियों के नए नए जत्थे आते। कुछ दिन गुलबर्गा की कैम्प जेल में

ठहरते और उसके बाद अन्य जेलों में उनका तबादला हो जाता ।

सायद जुलाई मास के शुरू की बात रही होगी । आर्य मुसाफिर कुंवर सुख लाल काफी संख्या में सत्याग्रहियों का जत्था लेकर आए थे । कैप जेल में रखे गए । वे अद्भुत वक्तृत्व शक्ति के धनी थे । रोज रात को कैम्प जेल में उस 'वाणी' के जादूगर' का व्याख्यान होता । विभिन्न प्रदेशों से आए जिन सत्याग्रहियों ने इससे पहले न उनको कभी देखा, न सुना, केवल उनकी वक्तृत्व कला का यश ही जिनके कानों तक तब तक पहुंचा था, उन सब सत्याग्रहियों को भी उनके भाषण सुनने का सौभाग्य मिला और उन सबने उनके जत्थे में शामिल होने की यह बहुत बड़ी उपलब्धि मानी ।

एक दिन एक सत्याग्रही ने आकर बताया कि आज रात को कुंवर साहब का 'ईश्वर के स्वरूप' पर भाषण होगा ।

कुंवर साहब के यश से मैं भी अपरिचित नहीं था । मुझे आश्चर्य इस बात पर भी हुआ कि 'ईश्वर के स्वरूप' जैसे दार्शनिक और शास्त्रीय विषय पर वे क्या कहेंगे । वे दर्शनों के या शास्त्रों के मर्मज्ञ थोड़े ही हैं । वे तो भजनोपदेशक हैं, शास्त्रीय विषयों के व्याख्याता नहीं । पर जिस व्यक्ति ने सूचना दी थी, उसका भी आग्रह था कि काश ! एक बार उनका भाषण आप सुन पाते !

तभी वार्ड नं० 5 के, गुरुकुल वृन्दावन के एक छात्र सत्याग्रही ने आकर एक और खबर सुनाई । उसने कहा—'हमारे वार्ड में कुछ अन्य गुरुकुलों के ब्रह्मचारी सत्याग्रही बन कर आए हैं । हमारे वार्ड के इन्चार्ज तो हैं स्वामी ब्रह्मानन्द जी—गुरुकुल भैंसवाल के संस्थापक आचार्य, पर वे इतने सीधे हैं कि वार्ड के सत्याग्रहियों को अनुशासन में नहीं रख पाते । प्रायः रोज ही हमारे वार्ड में स्थित गुरुकुल के ब्रह्मचारियों और अन्य सत्याग्रहियों में कहा सुनी हो जाती है । यदि किसी दिन यह कहा-सुनी बढ़ गई और कहीं आपस में मारपीट की नौबत आ गई, तो सत्याग्रहियों की बहुत बदनामी होगी । जेल के अधिकारी भी क्या कहेंगे । इसलिए हमारे वार्ड के कुछ वरिष्ठ सदस्यों का कहना है कि यदि आप वहां आकर दोनों पक्षों को समझाएं तो समस्या सुलझ सकती है ।'

मन ही मन खिन्नता हुई । सत्याग्रही यदि आपस में ही लड़ेंगे, तो कितनी अशोभनीय बात होगी । यदि हम अपनी नैतिकता का सिक्का जेल के अधिकारियों पर भी नहीं बिठा सके तो हममें और अन्य 'क्रिमिनल' कैदियों में क्या अन्तर रह जाएगा ?

मैंने गुरुकुल वृन्दावन के उस ब्रह्मचारी से कहा—'भैया ! मेरी कौन सुनेगा ?'

तब तक नारायण स्वामी जी, आनन्द स्वामी जी, तथा एक-दो अन्य सर्वाधिकारियों को गुलबर्गी की जेल से हटाकर शहर में एक अच्छे बंगले में रखा जा चुका

था। जब इन वृद्ध और वरिष्ठ आर्य नेताओं को जेल में दिए जाने वाले कष्टों के विरोध में देशव्यापी आन्दोलन हुआ, तो उनको जेल से हटाकर एक बंगले में रख कर 'ए' क्लास के कैदियों की सुविधा देने के लिए निजाम सरकार को मजबूर होना पड़ा था। सत्याग्रहियों के पुराने सभी वार्ड इस प्रकार प्रायः वरिष्ठ नेता-शून्य हो गए थे। ऐसे समय 'निरस्त पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते' वाली बात हो गई। जहाँ और कोई पेड़ न हो, वहाँ अरंडी को ही सबसे बड़ा पेड़ समझ लिया जाता है।

उस ब्रह्मचारी ने कहा — 'आप सबसे पहले जत्थे के सत्याग्रही हैं। इस समय गुलबर्गा जेल में आप ही सबसे पुराने सत्याग्रही हैं। आपने सत्याग्रह के सबसे पहले जत्थे में शामिल होकर और गुरुकुल कांगड़ी के जत्थे का नेतृत्व करके जो उदाहरण उपस्थित किया है, उसके कारण जेल के सभी वार्डों के गुरुकुलों के ब्रह्मचारियों में आपकी चर्चा होती रहती है और सभी को आपसे प्रेरणा मिलती है इसलिए और चाहे कोई आपकी बात सुने या न सुने, पर गुरुकुलों के ब्रह्मचारी आपकी बात अवश्य सुनेंगे।'

इन कुछ महीनों में ही यह बुजुर्गी मेरे भले पड़ जाएगी, सो भी छात्रावस्था में ही, यह कल्पना नहीं थी। क्या गिरफ्तार होने के बाद से अब तक के महीनों में सिर और दाढ़ी पर अनायास बढ़ आया जटाजूट तो इस बुजुर्गी का कारण नहीं था?

सोचा कि जाकर देखने में क्या हज़ है? फिर कुंवर सुखलाल का भाषण सुनने का अवसर तो कहीं गया नहीं। पांचवें वार्ड के साथ ही कैम्प जेल लगी हुई है। और कैम्प जेल में आने जाने वाले सत्याग्रहियों पर कोई पाबन्दी भी नहीं होती।

उस दिन, दिन का काम खत्म होने पर, गुरुकुल वृन्दावन के उस ब्रह्मचारी के साथ मैंने अपना टिकट बदला—अपना टिकट उसे दिया और उसका टिकट मैंने लिया, और अपनी 'आइडेंटिटी' छिपाने के लिए मुंह और सिर पर तौलिया लपेट कर मैं अपने वार्ड से निकल कर वार्ड नं० 5 में पहुँच गया। मुंह और सिर पर तौलिया लपेटना इस लिए आवश्यक था कि कोई वार्डर पहचान न सके—सबसे पुराना सत्याग्रही होने के नाते सब वार्डर भी इस 'गुरुकुलिया' को पहचानते थे।

वार्ड नं० 5 के सत्याग्रहियों ने सचमुच ही बड़े प्रेम से अपनाया। कहने लगे—'अब आपको इस वार्ड से जाने नहीं देंगे।'

मैंने कहा—'भले और भोले भाइयो! अगर मेरी यह चोरी पकड़ी गई, तो मेरी क्या गति बनेगी? फिर सत्याग्रहियों पर जो लांछन लगेगा, सो अलग। मेरे वार्ड में जब मेरी अनुपस्थिति पता लगेगी तो शायद मुझे फरार समझ लिया जाए। कोई सत्याग्रही जेल से भाग जाए, यह कितना बड़ा लांछन है?'

पांचवें वार्ड में ही गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के प्रकाशवीर और भूदेव शास्त्री भी थे। प्रकाशवीर तो उस समय केवल 16 वर्ष की आयु के ही थे। किसे कल्पना थी कि भविष्य में यह किशोर आर्यसमाज का और देश का कितना बड़ा

नेता बनने वाला है। इस कारावास ने ही तो उनके मन में वैदिक धर्म की वह लौ जगाई थी यावज्जीवन कभी मन्द नहीं पड़ी।

गुरुकुलों के ब्रह्मचारियों से तथा अन्य सत्याग्रहियों से बात हुई। उन्हें समझाया कि यह चन्द दिनों का मेला है। फिर न जाने कौन कहां होगा ! इसलिए जब तक यहां साथ रहने का मौका मिला है, तब तक हम सब स्वयं मिलजुल कर सत्याग्रही सम्बन्धी कोई बदनामी वाली बात न होने दें। इसी में हम सत्याग्रहियों की शोभा है।

उन्होंने आश्वासन दिया कि भविष्य में हमारा कलह नहीं होगा।

रात को 'कुंवर साहब' का जादूभरा भाषण सुना। तब समझ में आया कि वक्तृत्व कला के लिए शास्त्रीय ज्ञान उतना आवश्यक नहीं जितना बात को कहने की कला और प्रतिभा आवश्यक है। इसीलिए तो गीता में कहा है—'वक्ता दशसहस्रेषु'—हजारों लोगों में कोई एक वक्ता होता है।

अगले दिन मैं अपने वार्ड में वापिस आ गया।

० ० ०

उसी दिन जेल सुपरिंटेंडेंट का निजी क्लर्क मुझे तलाश करता हुआ आया।

अगर उसी दिन मैं पांच नम्बर के वार्ड से न आ गया होता तो कितना अनर्थ हो जाता। क्या कैदी के फरार होने की बात उड़ते ही 'पगली' न बज जाती ?

क्लर्क ने कहा—'गजब हो गया।'।

'क्यों क्या मुसीबत आ गई ?'

'मुसीबत मेरी नहीं, आपकी।

'कैसे ?'

'आपकी चिट्ठी पकड़ी गई है।'

'मेरी चिट्ठी ? क्या बात हुई ?'

'पांचवें वार्ड के कुछ कैदियों को भिट्टी खोदने के लिए जेल से बाहर ले जाया जा रहा था, गेट पर तलाशी के समय एक कैदी के लंगोट की अन्दरूनी जेब में से यह चिट्ठी निकली।'

'यह कैसे पता लगा कि चिट्ठी मेरी है। उस कैदी ने मेरा नाम बताया होगा।'

'नहीं, हरगिज नहीं। उस कैदी से बार-बार पूछा गया कि यह किसकी चिट्ठी है। पर वह यही कहता रहा कि मैं नहीं जानता, किसकी चिट्ठी है। फिर तुम्हारे पास कैसे आई ?' उस कैदी ने कहा कि हम पानी के होज के पास नहा रहे थे, होज की चहारदिवारी पर यह चिट्ठी रखी थी। मैंने सोचा, कोई भूल गया है।

स्नान करने के बाद वार्ड में जाने पर सबसे पूछ लूंगा, फिर जिसकी चिट्ठी होगी, उससे दे दूंगा। इसलिए लंगोट में ही चिट्ठी खोस ली। इतने में ही जेल से बाहर मिट्टी खोदने के लिए जाने वाले सत्याग्रहियों को बुलाने के लिए वार्डर आ गया। हम वैसे ही चल पड़े। वार्ड में जाकर अन्य साथियों से पूछने की नीयत ही नहीं आई। इसलिए यह चिट्ठी मेरे लंगोट में खुसी रह गई।

वह सत्याग्रही बड़ा हिम्मती था। मेरा अनुरक्त भक्त भी। मुझसे स्वयं आग्रह करके चिट्ठी ले गया था। चांस था कि पकड़ी गई। पर अवसर के अनुकूल उसने जिस तरह बात को मोड़ दिया और मेरा नाम अपनी जबान पर नहीं आने दिया, उसके लिए उसकी सूझ और हिम्मत दोनों की दाद देनी होगी।

मैंने क्लर्क से कहा — 'फिर अब ?'

उसने कहा — 'फिर क्या ? सुपरिंटेंडेंट ने आपकी चिट्ठी देख ली है। उसके पूरे 5 पेज देखकर वह चौंका। उसने समझ लिया कि हो न हो, इस चिट्ठी में जेल के अन्दरूनी हालात की तफसील होगी। उसने मुझे वह चिट्ठी पकड़ाते हुए कहा कि देखो किसकी लिखी है। सुपरिंटेंडेंट को हिंदी नहीं आती।

क्लर्क बोला — 'मैंने चिट्ठी देखी, तो वह आपकी निकली। सुपरिंटेंडेंट को नाम तो बताना ही पड़ा। तब सुपरिंटेंडेंट भी गर्दन हिलाते हुए बोला—'अच्छा, यह 'गुरुकुलिया' आज काबू में आया है। इस चिट्ठी का उद्गार में अनुवाद करके मुझे दो'—यह सुनकर मैं घबराया और अब दौड़ा दौड़ा आपके पास आया हूं।'

'तो इसमें परेशान होने की क्या बात ? जो होगा, सो देखा जाएगा।'—मैंने अविचलित भाव से कहा।

क्लर्क बोला — 'आप नहीं समझते। यदि इस चिट्ठी के कारण आपको कोई ऐसी-वैसी सजा मिल गई तो मेरी आत्मा को कितना क्लेश पहुँचेगा। यदि आपको चिट्ठी भेजनी थी, तो आप मुझे देते, मैं बाहर भिजवा देता। पर इस तरह की चोरी ? वह आपकी शान के योग्य नहीं।'।

'सजा क्या मिल सकती है ?'

'कुछ भी। सुपरिंटेंडेंट के मूड पर है'

'फिर भी ?'

क्लर्क बोला—'मैंने आपकी सारी फाइल देखी है। आपके छूटने के दिन नजदीक आ रहे हैं। आपका सारा रिकार्ड जितना साफ है, उसको देखकर लगता है कि कैदियों को प्रतिमास अच्छे व्यवहार के लिए सजा में जो कुछ दिनों की छूट (Remission) मिलती है, वह आपको भी अवश्य मिलेगी। पर इस चिट्ठी के कांड के बाद शायद आपको मिलने वाली वह छूट न मिल पाए।'

'और क्या सजा मिल सकती है ?'

‘आपका बदरखा भी हो सकता है ।’

‘इसमें कौनसी परेशानी है ? जैसी यह जेल, वैसी ही और जेलें । कहीं भी रह लेंगे । आखिर मेरे सब साथियों का बदरखा (तबादला) हुआ ही है । क्या फर्क पड़ता है ?’

क्लर्क बोला — ‘फर्क आपको नहीं, मुझे पड़ता है । मैं आपसे संस्कृत सीखता हूँ । आप मेरे गुरु हैं । आप यहां नहीं रहेंगे, तो मैं संस्कृत किससे पढ़ूंगा ।’

‘तो तुम अपने इस छोटे से स्वार्थ के कारण इतने विचलित हो ! यहां तुम्हें संस्कृत पढ़ाने वाले तो और अनेक लोग मिल जाएंगे ।’

‘संस्कृत पढ़ाने वाले तो और भले ही मिल जाएंगे, पर मेरे हाथों मेरे गुरु का कोई अहित हो, तो उसे मेरा मन कैसे बर्दाश्त करेगा ? नहीं, यह मैं हरगिज नहीं होने दूंगा ।’

‘तो फिर अब करना क्या है, यह बोलो । मैं तो अपनी ओर से सब परिस्थितियों के लिए तैयार हूँ ।’

‘आपको सिर्फ इतना करना है कि इतने ही पृष्ठों की, इसी रंग के कागज पर, एक दूसरी निर्वोष चिट्ठी लिख कर दे दो । मैं इस चिट्ठी को फाड़ कर फेंक दूंगा और उस नई चिट्ठी का उर्दू में अनुवाद करके सुपरिंटेंडेंट को दे दूंगा । फिर मैं भी बच जाऊंगा, आप भी बच जाएंगे ।’

मैंने उससे कहा — ‘भले मानस ! तुम्हें यह मालूम है कि यह कागज-कलम-दवात कितनी मुश्किल से, तुम्हारे डाकुओं वाले बांड से ही मांग कर लाया था । अब ये सब चीजें दुबारा कहाँ से जुटा पाऊंगा ?’

उसने कहा — ‘यह जिम्मेवारी मेरी है । अभी मैं सब चीजें लाकर देता हूँ । आप मेरी खातिर यह कष्ट करें ।’

मैंने जब ‘अच्छा !’ कहा, तो वह खिल उठा । मेरे चरणों की ओर हाथ बढ़ाने लगा । मैं एक गुरुकुल का सामान्य किशोरावस्था का छात्र और वह प्रौढ़ावस्था का एक बुजुर्ग ! मैंने कहा — ‘अरे भाई, यह क्या करते हो ?’

उसने कहा — ‘आपने मेरी बात मान ली । आपका कितना धन्यवाद कल ! मेरा अहोभाग्य ! मैं एक धर्म-संकट से बच गया ।’

वह वापिस जाने लगा तो मैंने देखा कि वह अपनी कोहनी से अपनी आंखें पोंछ रहा है ।

उसकी सदाशयता से मैं भी विचलित हो गया ।

मैंने अपने सारे जेल जीवन में एकमात्र यही चिट्ठी लिखी थी, सो भी घर को नहीं, शोलापुर में ‘दिग्विजय’ अखबार के दफ्तर को ।

० ० ०

11 ठकों को उस क्लर्क का परिचय दिए बिना भी काम नहीं चलेगा।

वह एक हत्यारा था। जन्म से ब्राह्मण। हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी और तेलगु भाषा का अच्छा जानकार। डाकुओं के वाडें में ही उससे परिचय हुआ था। काफी लम्बी सजा उसे हुई थी। उसका पूरा केस क्या है, पूछने की कभी हिम्मत नहीं हुई। एक बार कुछ पूछा, तो वह टाल गया। मैंने भी सोचा कि किसी की निजी जिंदगी में झांकने की अनधिकार चेष्टा क्यों की जाए। पर अन्य डाकुओं से ही पता लगा कि किसी पारिवारिक कलह में फंस कर उत्तेजना की अवस्था में उससे कत्ल हो गया। कत्ल तो हुआ, पर वह इसी के हाथों हुआ, यह स्पष्ट नहीं है। ज्यादातर का ख्याल यही है कि उसे उसके परिवार वालों ने कत्ल के केस में जानबूझ कर फंसा दिया। इसने 'भाग्य का फेर' समझकर सब स्वीकार कर लिया। अब यहाँ जेल में अपना खाली समय अधिकतर पूजा-पाठ में ही गुजारता है। इसको किसी से कोई शिकायत नहीं, किसी और को इससे कोई शिकायत नहीं। इसने अपनी ओर से आज तक जेल में कभी किसी का कुछ बिगाड़ा हो, यह सुना नहीं गया। सब इसका बहुत आदर करते हैं। मन ही मन इसकी सज्जनता के कायल हैं। जेल के अधिकारी भी इसे बहुत अच्छी निगाह से देखते हैं और इसकी लम्बी सजा को इसके पूर्व जन्म के किन्हीं कृत्यों का परिणाम मानते हैं।

इसकी सज्जनता और विद्वत्सनीयता के कारण ही सुपरिंटेंडेंट ने मशकत के तौर पर इसे और कोई काम देने के बजाय इसे अपनी डाक देखने का काम सौंपा है। सत्याग्रहियों की आने वाली डाक इसी के हाथों गुजरती है। सुपरिंटेंडेंट भी जिस चिट्ठी को आपत्तिजनक या सन्देशास्पद समझता है, उसका उर्दू में अनुवाद करवा के स्वयं देखता है, तब फंसला करता है कि यह चिट्ठी बाहर जाने दी जाए या न जाने दी जाए, या बाहर से आई है तो सत्याग्रही को दी जाए या न दी जाए।

डाकुओं के वाडें में उन खूंखार व्यक्तियों के बीच इस गाय जैसे सीधे व्यक्ति को देखकर आश्चर्य हुआ था। तभी उसने मुझसे संस्कृत पढ़ने की इच्छा प्रकट की थी। तभी से वह मुझे अपना गुरु मानने लगा था।

० ० ०

31 अन्तस्तल के धरातल पर ऐसी ही खट्टी-मीठी न जाने कितनी स्मृतियाँ बिखरी पड़ी हैं। एक को कुरेदता हूँ, तो दूसरी अपनी गर्दन बाहर निकाल कर झांकने लगती है और पूछने लगती है 'मुझे भूल गए क्या?'

सच तो यह है कि स्मरण रखना जितना जरूरी है, विस्मरण उससे भी अधिक जरूरी है। अगर आदमी को सब चीजें याद रहतीं और वह एक भी घटना को न भूलता, तो स्मृतियों के बोझ से इतना दब जाता कि जीना दूभर हो जाता। विस्मरण के कारण ही तो वे व्यक्ति और घटनाएँ विशेष स्पृहणीय हो जाती हैं जो काल का प्रहार सह कर भी स्मृति के कोष में सुरक्षित रहती हैं।

याद आते हैं श्रद्धा के योग्य नारायण स्वामी जी महाराज जो आपाद मस्तक साधुता से ओत-प्रोत थे। कभी किसी चीज की मांग नहीं, कभी किसी चीज की शिकायत नहीं। वे प्रातः तीन बजे उठ कर ही नित्यकर्म से निवृत्त होकर बैरक के अन्दर ही चार बजे टहलना शुरू कर देते। जेल में उनके लिए पलंग आया, उन्होंने वापिस कर दिया। उनके लिए गद्दा आया, वह भी वापिस कर दिया। पांव में हमारी ही तरह लोहे का भारी कड़ा। उसकी भी कभी किसी से शिकायत नहीं। जब तक हमारे साथ बैरक में रहे, उन्होंने अपने लिए कभी कोई विशेष चीज स्वीकार नहीं की न विशेष भोजन, न फल आदि कुछ भी पदार्थ। सत्याग्रही के आदर्शों का मन-वचन-कर्म से पूरा पालन करने वाले।

याद आते हैं श्री चांदकरण शारदा। जो छोटे-बड़े नए-पुराने सभी सत्याग्रहियों से समान रूप से गले मिलते और कभी किसी से कोई मेद-भाव न करते।

याद आते हैं श्री खुशहाल चन्द खुर्सन्द, जो हरेक सत्याग्रही से हंस कर पूछते—‘कहो खुशहाल हो?’ और इस तरह अपने नाम को ही हरेक के कुशल-क्षेम जानने का साधन बना लेते।

मुखे याद आते हैं मुन्नालाल मिश्र भजनोपदेशक जो इतनी शांत प्रकृति के थे कि कभी किसी ने उन्हें गुस्सा करते नहीं देखा। आकृति में सौम्यता, वाणी में मधुरता। जब शुरू शुरू में शाम को बैरक में बन्द होने के बाद हम सामूहिक सन्ध्या करते और जेल के अधिकारियों के इस आदेश का पालन करना पड़ता कि सन्ध्या की आवाज बैरक से बाहर नहीं जानी चाहिए, तब केवल मुन्नालाल ही अत्यन्त धीमी आवाज में मन्त्र बोलते और अन्य सब सत्याग्रही मुंह में गुनगुनाते रहते। इसी तरह वे सम्मिलित भजन भी बुलवाते—पर शर्त वही बैरक से बाहर आवाज न जाने की। शायद इतनी कुशलता से अन्य कोई व्यक्ति इस कठिन घड़ी में सन्ध्या और प्रार्थना का संचालन न कर सकता।

मुखे श्री जियालाल जी द्वारा शुरू-शुरू में ही भेजा गया 18 सत्याग्रहियों का वह जत्था भी याद आता है जिसमें सब हट्टे-कट्टे नवयुवक थे और वे इस तैयारी के साथ आए थे कि यदि निजाम की जेल से जीवित न लौट सकें, तो न सही। जत्थे में दो-तीन नौजवान पक्के बीड़ीबाज भी थे। पर जिस दिन उन्होंने गुलबर्गा जेल में कदम रखा, उसी दिन से प्रण किया कि आगे से कभी बीड़ी को हाथ नहीं लगाएंगे और सचमुच ही जिस दृढ़ता से उन्होंने अपने व्रत का पालन किया, वह दृढ़ता बाद में आने वाले सत्याग्रहियों में नहीं दिखी। उनमें से एक तो इसी कारण बीमार पड़ गया, जेल के अस्पताल में भर्ती हुआ, उसका हृष्ट-पुष्ट शरीर सूखकर आधा रह गया, पर बीड़ी को हाथ नहीं लगाया, तो नहीं ही लगाया।

याद आते हैं कृष्णदत्त और गंगाराम जिन्होंने मन्दिर के शिखरस्थ कलश बनाने का कभी प्रयत्न नहीं किया और हमेशा नींव के पत्थर की तरह गुमनाम और

ओट में रह कर काम करने में ही अपनी सार्थकता समझी। इन्हीं दोनों हम-उम्र किशोरों ने ही तो दिल्ली से सिकन्दराबाद पहुंचने पर उस आतंक, भय और निराशा के बातावरण में गुप्त संदेशवाहक का काम किया था और हमारे लिए हैदराबाद पहुंच कर सत्याग्रह करने की योजना को रूप दिया था।

इन्हीं के साथ एक और नींव का पत्थर याद आता है जिसका नाम है प्रकाश आर्य कलाकार, जिससे उस समय तो परिचय नहीं हुआ था, क्योंकि वह गुप्त और प्रच्छन्न कार्यकर्ता था, परन्तु बाद में जब परिचय हुआ तो मैं चकित रह गया कि यही वह व्यक्ति है जिसके लिए मैंने लिखा है— “न जाने वह कौनसी चिड़िया थी जो एक दिन पहले ही घरघर में यह खबर पहुंचा आई थी कि कल शाम को 5 बजे सुलतान बाजार के चौक में गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारी सत्याग्रह करेंगे।” वह चिड़िया यही थे।

फिर यह प्रकाश आर्य कलाकार कैसा छिपा रस्तम और कैसे जीवट का आदमी निकला कि जेल में मरने वाले सत्याग्रहियों के शव येन केन प्रकारेण प्राप्त कर लेता और उनके वैदिक विधि से अन्त्येष्टि संस्कार की व्यवस्था करता। भगवान् जाने इस व्यक्ति ने कैसा और कितना बड़ा जाल फैलाया होगा कि रामचन्द्रराव वन्देमातरम् को जेल के अन्दर बेंतों लगने का सही फोटो इसने प्राप्त कर लिया जो सारे संसार में और किसी के पास मिलना सम्भव नहीं। सामाजिक क्रांति की दृष्टि से यह पहला व्यक्ति था जिसने ब्राह्मण होकर भी हरिजन कन्या से विवाह किया था। उसके बाद ऐसे अनेक आर्य युवक आगे आए।

बाद में इस व्यक्ति ने पेंटिंग को ही अपनी जीविका का आधार बनाया और उसमें भी निश्चय किया कि आर्य नेताओं और क्रांतिकारी शहीदों के सिवाय और किसी के चित्र नहीं बनाऊंगा, चाहे कोई कितना ही पैसा दे।

याद आता है ठाकुर अमरसिंह जी का रोबीला चेहरा और उनकी बड़ी बड़ी भुंछें। श्री शेषराव बाघमारे का शेर का सा व्यक्तित्व और मुंह में हंसी के गोलगप्पे। श्री लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित (बाद में स्वामी विद्यामन्द सरस्वती) का ज्ञान की गरिमा से मण्डित प्रवचन। याद आता है मुहम्मद निवर्ती रेड्डी का हम किशोरों के साथ कबड्डी खेलना। और खिलन्दड़ी स्वभाव का वह गोपालराव—जो बात बिना बात के जब देखो तब हंसता रहता। मुझसे भी 4-5 वर्ष छोटा अत्यन्त सौम्य स्वभाव का किशोर गोविन्दराव, जिसे न जाने क्यों मेरे ही सान्निध्य में अधिकतम सुरक्षा अनुभव होती और वह छाया की तरह मेरे साथ लगे रहने की निरन्तर चेष्टा करता रहता।

इस गोविन्दराव की कथा भी बड़ी विचित्र है। अच्छा खाते-पीते घर का लड़का। जेल में रहते हुए मेरे सान्निध्य के कारण उसमें जो संस्कार पड़े, शायद उसी का यह परिणाम था कि उसने जीवनभर कभी अन्याय के सामने झुकना नहीं सीखा। जेल से छूटने के बाद पढ़ने लाहौर गया। उपदेशक विद्यालय में भर्ती हुआ।

पर उपदेशकी रास नहीं आई। लाहौर से चला आया। फिर मैट्रिक, इन्टर, बी० ए०, साहित्यरत्न, एम० ए० और अन्त में डाक्टरेट तक। घर से कभी सहायता नहीं ली। सब कुछ स्वयं अपने बल-बूते पर। निरन्तर संघर्ष ही संघर्ष। अन्याय के सामने न झुकने के कारण जहां भी रहा, कहीं बन नहीं पाई। इसी संघर्ष में शादी-व्याह की भी फुरसत नहीं मिली और निरन्तर आगे बढ़ने का प्रयत्न जारी रहा। पूरे चालीस वर्ष तक संघर्ष के पश्चात् नाव किनारे पर लगी—अभी वह आंध्रप्रदेश के एक कालेज में प्राध्यापक है। उस उम्र में आकर नाव किनारे लगी, जब और लोग रिटायर होकर अपने पुत्र-पौत्रों की नाव किनारे लगाने की फिर करते हैं। विधाता किसी के जीवन में कष्टों और संघर्षों की कैसी कड़ी परीक्षा खड़ी कर देते हैं। शायद अन्य कोई होता तो इतने संघर्षों के बाद टूट जाता। पर टूट जाता, तो जेल-जीवन व्यर्थ न हो जाता! कभी टूटना नहीं, कभी झुकना नहीं, कभी रुकना नहीं, यही तो कारावास की सार्थकता है। कवि के शब्दों में—

तू न रुकेगा कहीं,
तू न झुकेगा कहीं,
कर क्षपथ, कर क्षपथ, कर क्षपथ।
अग्निपथ, अग्निपथ, अग्निपथ ॥

जेल-जीवन तो जीवन के इसी अग्निपथ पर चलने के लिए आदमी को तैयार करता है। इस अग्निपथ पर चलते-चलते जिस के पांव में छाले पड़ गए, और पथिक पीड़ा के मारे हार कर बैठ गया, उसका जेल-जीवन व्यर्थ गया।

इस अग्नि-पथ के एक अनन्य पथिक रामचन्द्रराव वन्देमातरम् की याद आती है जिससे शुबलगर्जो ल में मिलने की अन्तिम समय तक हमें अनुमति नहीं मिली। वह रामचन्द्रराव सचमुच मृत्युंजय सिद्ध हुआ जिसने तीस बेंतें खाकर भी वन्देमातरम् का नारा लगाना नहीं छोड़ा। जल्लाद शराब पीकर, मदमत्त होकर, बेंत मारता और यह अग्निपथ का पथिक उतने ही जोर से बोलता—'वन्दे... मा... त... ..'। तीन-चार बेंतों के बाद नितम्ब की त्वचा फूल गई। फिर अगली बेंत उसी फूले भाग पर। फिर बेंत मारकर उसे इस सड़ाके से खींचना कि उसके साथ मांस का लोथड़ा भी उतर आवे। फिर उस घाव पर नमकीन पानी छिड़कना। फिर बेंत, बेंत पर बेंत। छह-सात बेंतों के प्रहार तक बेहोश। घावों पर मरहम। डाक्टर का नब्ज पर हाथ। कहीं कैदी मर तो नहीं गया। होश में आते ही फिर उसी तरह बेंतें। न बेंत रुके, न वन्देमातरम् का नारा रुका। '... इस तरह जिस व्यक्ति ने तीस बेंतें खाई हों, वह मृत्युंजय नहीं तो और क्या है! ...'

अन्त में डाक्टर और जल्लाद सब कैदी को टिकटिकी से उतार कर उसके सामने हाथ जोड़ कर माफी मांगते हैं—'हे मृत्युंजय! हमें माफ करो! हमने तो

केवल आदेश का पालन करके अपनी ड्यूटी पूरी की है।' और अग्नि-पथ का वह वीर पथिक उनको 'वन्देमातरम्' कह कर माफ कर देता है।

ऐसी ही न जाने कितनी स्मृतियाँ बिखरी पड़ी हैं।

उन स्मृतियों के पात्र कितने ही अनाम और गुप्त-नाम लोग आज पता नहीं कहाँ होंगे। जेल के उन साथियों में से पता नहीं कितने मर गए, खप गए और बचे-खुचे लोग आज पता नहीं जीवन की किस डगर में कहाँ भटक रहे होंगे !

कहते हैं—जेल और रेल की दोस्ती बड़ी क्षणिक होती है। जब तक रेल और जेल में साथ-साथ रहते हैं, तब तक घनिष्टता इतनी कि बेजोड़ ! जहाँ स्टेशन पर उतरे अथवा जेल के दरवाजे से बाहर आए कि फिर तुम कहाँ और हम कहाँ—कोई ठौर ठिकाना नहीं।

आज लगभग आधी सदी के बाद जेल के उन दिनों को और उन साथियों को याद करता हूँ, तो यही कहने को जी चाहता है—

उजाले अपनी यादों के हमारे साथ रहने दो।

न जाने किसी गली में ज़िंदगी की शाम हो जाए ॥

• • •

(११)

पूर्णमेवावशिष्यते

६ महीने का एक लम्बा डेंश—

इस 6 महीने के अन्दर क्या से क्या हो गया। जो प्रारम्भ में एक छोटी-सी चिनगारी थी वह इतने दिनों में भयानक अग्निकाण्ड बन गई। हिमालय पर्वत से हिन्द महासागर तक चारों ओर एक ही नाद था—'आर्यत्व संकट में है, उसे बचाओ।' "

अनादि काल से शान्त भागीरथी की शांत तरंगें चञ्चल हो उठीं और जब तक वे बंगाल की खाड़ी में जाकर विलीन नहीं हो गई तबतक प्रत्येक को सन्देश मुनाती रहीं—“जिस संस्कृति को मन्त्रद्रष्टा ऋषिधों ने मेरे तट पर ध्यानावस्थित होकर जन्म दिया था, आज वह खतरे में है। उसे बचाओ।” सुनने वालों ने सुना। जिस जिसके कान में यह आवाज पड़ती गई उस उसने कृष्ण-मन्दिर को अरना घर बना लिया। १००

अष्टम सर्वाधिकारी बैरिस्टर श्री विनायकराव विद्यालंकार जब अपनी चतुरंगिणी सेना सजाकर विजय-यात्रा के लिये चले तो दिग्गज हिल उठे। यह देखो, बढ़ी जा रही है सेना ! जरा सेना के उस देदीप्यमान हथियार को तो देखो—कैसा चमकीला—कितना तेज—और कभी कुण्ठित न होने वाला। मगर क्या मजाल यदि एक बूंद भी शत्रु का रक्त धरती पर गिरे ! अरे ! यह अहिंसा का हथियार ही ऐसा है। इसकी चमक से शत्रु-सेना स्वयं परास्त हो जाती है।

और ऐसे वह सेना लगातार बढ़ती जा रही है—चारों दिशाओं से नई नई कुमुक आकर इसमें मिलती जाती है—

किन्तु नियन्त्रण भी देखो इसका ! सेनापति ने कहा—“हॉल्ट !” और वह सारी की सारी सेना वहीं की वहीं खड़ी हो गई—ऊपर का पैर ऊपर और नीचे का नीचे। जब तक सेनापति का अगला आदेश नहीं आयेगा तब तक यह सेना बन्दूकों की छाया में यों ही खड़ी रहेगी !

नागपुर में सार्वदेशिक सभा की मीटिंग हुई। जिनके कन्धों पर उत्तरादयित्व का भार था उन सब महानुभावों ने परिस्थितियाँ अनुकूल समझ कर निर्णय किया कि भाग्यनगर का आर्य-सत्याग्रह स्थगित किया जाता है।

8 अगस्त 1939— जिस दिन सार्वदेशिक सभा ने उपरोक्त निर्णय किया था।

नास्तिकों की बात हम नहीं करते। सच्चे आस्तिक लोग तो प्रायः यह मानते हैं कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा प्रत्येक घटना का पहले ही निश्चय करके रखता है और फिर वह घटना उससे अन्यथा हो ही नहीं सकती। इसी प्रकार लेखक का भी विश्वास है कि उस घटघटव्यापी कठणाकर ने यह सौभाग्य गुरुकुल कांगड़ी को ही देना था कि आर्य-सत्याग्रह का प्रारम्भ गुरुकुल के विद्यार्थी करेंगे—इस पवित्र यज्ञ में सबसे प्रथम आहुति निष्कीट, शुष्क और शास्त्र-सम्मत समिधाओं की ही पड़ेगी। अंत में पूर्णाहुति भी गुरुकुल का स्नातक ही देगा। बैरिस्टर श्री विनायकराव विद्यालंकार गुरुकुल के ही सुयोग्य स्नातक थे।

और ऊपर से यह आश्चर्य तो देखो—कि जिस दिन वह प्रथम आहुति गिरफ्तार हुई उस दिन वह आर्य-सत्याग्रह का श्रीगणेश था, और जिस दिन वह प्रथम आहुति अपनी 6 मास की कारावास की अवधि समाप्त करके बाहर निकली, उस दिन आर्यसत्याग्रह की इति-श्री थी। नहीं तो यह कैसे होता कि उधर तो 8 अगस्त को सार्वदेशिक सभा सत्याग्रह को स्थगित करने का निर्णय कर रही होती, और इधर हम उसी 8 अगस्त को अपनी सजा समाप्त करके जेल के दरवाजों से बाहर निकल रहे होते !

० ० ०

किन्तु उपरोक्त डैश से पहले एक छोटा-सा सेमीकोलन और लगाने दीजिए—

जब सभी साथी अलग-अलग हो गये तब ऐसी अवस्था आ गई कि उस समय निजाम राज्य की शायद ही कोई जेल बची हो जिसमें गुरुकुल का कोई न कोई विद्यार्थी उपस्थित न हो। लेखक तो यदि थोड़ा-बहुत कुछ कह सकता है तो केवल हैदराबाद या गुलबर्गा जेल के विषय में ही कह सकता है। किन्तु जिनको आत्म-सम्मान और अत्याचार-विरोधी भावों के कारण अधिकारियों ने एक जगह स्थिर नहीं रहने दिया, अनेक जेलों का पानी पीने वाले अपने उन साथियों के विषय में लेखक नहीं, उन जेलों की दीवारें स्वयं कहेंगी। यदि आज भी कोई दर्शक निजाम राज्य की किसी जेल का अतिथि बनकर जावे और वहां के पुराने कैदियों से इस विषय में बात करे तो वे बतायेंगे कि किस प्रकार सबसे पहिले गुरुकुल के विद्यार्थियों ने वहां मार सह कर और कष्ट सहकर अन्य सत्याग्रहियों के लिये सुविधायें प्रदान करवाई थीं।

कहीं विद्यासार को डण्डों से मार-मार कर हाथ पांव से बेकार कर दिया जाता है, कहीं उदयवीर को बाल पकड़ कर घसीटा जाता है, कहीं धीरेन्द्र को भूखों मारा जाता है, कहीं विद्यारत्न को कत्ल करने की धमकी दी जाती है, कहीं इन्ग्लेस को टिकटकी पर चढ़ाया जाता है..... और इस तरह यह लम्बी लिस्ट लगातार बढ़ती ही चली जाती है !

किन्तु —

किन्तु नहीं भूला जा सकता सकता वह दृश्य—जबकि सुपरिटेण्डेंट साहब भाई रामनाथ को एक हुए दिन डांटते हुए कहते हैं—“तुम! तुम हैदराबाद रियासत के कानूनों को क्या बदलोगे ? तुम तो अंगुलि कटवा कर शहीद बनने चले हो। तुम्हारे इस सत्याग्रह से कुछ नहीं हो सकता।”

तब भाई रामनाथ ने उत्तर दिया था—“यदि सच्चे शहीद बनने का मौका आयेगा तो वह भी बनकर दिखा देंगे। किन्तु अंगुलि काट कर शहीद बनने वालों में यदि आप भी शामिल होना चाहते हैं—तो यह लीजिये, मेरी अंगुलि काट कर उसका खून आप अपनी अंगुलि पर लगा लीजिये।”

और तब इस गुस्ताखी के फलस्वरूप उसे तीन-चार मुसलमान वार्डरों के सिपुर्द करके ‘लक्कड़ वार्ड’ में भेज दिया गया। वहां उन क्रूर वार्डरों ने डण्डों से और जूतों से उसे इतना पीटा था कि वह लोहलुहान होकर बेहोश हो गया था...

फिर उससे माफी मंगवाने के लिये बड़े बड़े प्रयत्न किये गये—जबर्दस्ती मुख में मांस डाला गया, महीनों उससे पेशाब और टट्टी उठवाई गई, और उसकी पीठ पर कितने डण्डों के निशान थे ! किन्तु वाह वीर ! तूने सब कुछ हंसते हुए सहा—पर तेरे मुख से ‘क्षमा’ शब्द न निकल सका !

कोई संगारेड्डी से छूट कर आया, कोई करीम नगर से, कोई वारंगल से, कोई उश्मानाबाद से, कोई निजामाबाद से, कोई औरंगाबाद से, कोई गुलबर्गा से और कोई चञ्चलगुडा से। और जब हम सब के सब बम्बई में पहली बार मिले—ओह !

कितना भव्य दृश्य था ! पता नहीं कितनी त्रिवेणियों के संगम की भव्यता उस एक छोटी-सी टुकड़ी में अनुस्यूत हो उठी थी !

किन्तु पाठक, मुझे क्षमा करना । थोड़ी-सी गलती हो गई है । मैंने लिखा है—“पूर्णमेवाविशिष्यते ।” भला यह भी कहीं सम्भव है कि अग्नि में पड़ी आहुति भस्म-निश्शेष बनकर भी पूर्णविशिष्ट रहे ! किन्तु, सचमुच हम पूरे पन्द्रह के पन्द्रह ही मुक्त होकर आये थे—“पूर्णविशिष्ट”—पर दुर्भाग्य का उपहास तो देखो कि फिर भी ‘पूर्णविशिष्ट’ नहीं रहने पाये !

उस रामनाथ ने एक दिन सुपरिटेंडेंट साहब को जो कुछ कहा था उसे सत्य कर दिखाया—अंगुलि कटा कर सहीद होना उसने नहीं जाना था !

उस जेल के साथ ही वह इस शरीर की जेल से भी मुक्त हो गया ! काश ! कि मृत्यु के मुख से छीनकर उसे एक बार कुलमाता की गोद में बैठा सकता !

जिन दिन इस यात्रा के लिये हम प्रयाण करने चले थे उसी दिन सवेरे एक छोटे-से बच्चे ने आकर पूछा था—“भाई जी ! आप कहाँ जा रहे हैं ?”

“हैदराबाद ।”

“वहाँ क्या करेंगे ?”

उसको समझाने के लिये सरल-भाव से मैंने कहा—“वहाँ हम सन्ध्या-हवन करेंगे ।”

उसका भोलापन फिर पूछा बैठा—“क्यों, यहाँ क्या आपको सन्ध्या-हवन नहीं कर देते ?”

“नहीं, यहाँ तो करने देते हैं । किन्तु वहाँ नहीं करने देते । वहाँ का राजा मुसलमान है और हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार करता है ।”

“अच्छा भाई जी ! मुसलमान तो गाय को मार कर खाते हैं । वे तो बड़े निर्दयी होते हैं । आपको भी खूब मारेंगे और खाने को रोटी नहीं देंगे ?”

“नहीं, रोटी तो हमें मिल ही जावेगी । अलबत्ता मारेंगे सो देखा जावेगा ।”

“तो फिर रोटी कैसे मिल जावेगी, क्या यहाँ से बांधकर ले जायेंगे ?”

“मुझे बच्चे की बात पर हंसी आ गई । उसकी इस बात को किसी तरह टाला । उसने चलते-चलते कहा—“अच्छा भाई जी ! यदि आप मर जायें तो हमें भी सूचना देना । हम भी रोयेंगे !”

उस बच्चे के सामने जाते हुए मुझे डर लगता है !

उसे कैसे समझाऊँ कि मैं तो हैदराबाद से जीवित ही वापिस लौट आया हूँ—किन्तु अपने एक साथी को अपने साथ नहीं ला पाया !

उस बच्चे की आत्मा चिल्लायेगी—“ओ ! विश्वासघाती !”

विश्वात्मा पुकारेगी—“ओ ! विश्वासघाती ! !”

और स्वयं मेरी अन्तरात्मा मुझे धिक्कारेगी—“ओ ! विश्वासघाती ! ! !”

सत्याग्रह की बलि

इस प्रभात में...

सत्याग्रह में शहीद साथी

सरल ओस के आंसू मेरे

ब्र० रामनाथ की स्मृति में

साथी, हों स्वीकार !
साथ हमारे कभी खिले थे
इस उपवन की डाली पर,
सुषमा थी अभिराम तुम्हारी
झलक रहा था प्यार !

माली के हाथों ने तोड़ा
गूँथ लिया अपनी माला में,
प्रथम देवता के चरणों में
तुम्हीं बने उपहार !

सरल ओस के.....!

—‘सूर्यकुमार’



ब्र० रामनाथ

बन्दी !

जेल के सहायत्री और गुरुकुल के सहाय्यायी श्री उदयवीर 'विराज' ने उसी काल में उक्त शीर्षक से कुछ कविताएँ लिखी थीं। वे भी पाठकों को भेंट की जा रही हैं—

(१)

संगी ! सुन आह्वान हुआ है !

बज उठे शंख, सज गई सैन्य,
मिट जाय देश का दुःख दैन्य,
यौवन के मादक गायन से मेरा भी विचलित ध्यान आ है !
संगी ! सुन आह्वान हुआ है !

ताल ताल पर हृदय उछलते,
लड़ पड़ने को हाथ मचलते,
सेना के सुनकर समर वाद्य मरना भी आसान हुआ है !
संगी ! सुन आह्वान हुआ है !

तलवारों की सुखद ताल पर,
गोली के वर्षण कराल पर,
सौ सौ कण्ठों से चण्डी के भीषण रण का गान हुआ है !
संगी ! सुन आह्वान हुआ है !

(२)

कितना महान् कितना कराल
जीने मरने का अन्तराल !

हम छोड़ चके जब अपनापन
आजादी के मतवाले बन,
तब खत्म हुई जीवन-सीमा
तब लगा दीखने घोर मरण
तब लगी दीखने चिता-ज्वाल,
जीने मरने का अन्तराल !

तब प्राप्त हुई हमको कारा
 जीवन ने जिसको धिक्कारा
 ओ मृत्यु-देव ने भी जिसको
 अभिशाप समझ कर दुत्कारा,
 नर की कृति यह ! नर विनत भाल !
 जीने मरने का अन्तराल !

(३)

संगी ! घोर काराद्वार !

देख कर उन्साह घटता,
 स्वयं पीछे पैर हटता

किन्तु घुसना ही पड़ेगा आज हो लाचार !
 संगी ! घोर काराद्वार !

बस जरा पहुँचे कि बन्दर
 और इन खाली सिरो पर
 आयेगे बन्दीध्व के लाखों अनेकों भार !
 संगी ! घोर काराद्वार !
 नरक में या स्वर्ग में इस
 निज स्वयं में ही स्वयं पिस
 हम घुसेंगे और यह रह जायगा संसार !
 संगी ! घोर काराद्वार !

(४)

सुन संगी, बन्दी का गाना !

बेचारा चुप चाप गा रहा
 गा भी वह इसलिए पा रहा
 क्योंकि अभी तक नहीं किसी भा क्रूर सिपाही ने है जाना
 सुन संगी, बन्दी का गाना !

सुनकर खुद आँसू आ जाते
 रोके जरा न रुकने पाते

मेरा उर भी उसके दुःख में चाह रहा है हिस्सा पाना !
सुन संगी बन्दी का गाना !

कभी कभी दो पद गा लेता;
यह अपनी पीड़ा से देता—
निज को और विधाता को भी कितना हृदय-विदारक ताना !
सुन संगी, बन्दी का गाना !

(५)

हो चली है शाम !

आ गई छाया यहाँ तक
चार बज जाते जहाँ तक,
बस जरा सा काम कर लें और फिर विश्राम !
हो चली है शाम !

धमता सा लग रहा सिर
औ अन्धेरा सा रहा घिर,
हैं सुबह से कर न पाया दो मिनट आराम !
हो चली है शाम !

हो बुरा इन वार्डरों का
औ सिपाही जेलरों का,
जान से प्यारा हमारी है इन्हें बस काम !
हो चली है शाम !

(६)

सुनसान कारागार !!!

खुल गई है नींद मेरी,
रात है काली अन्धेरी,
शब्द कुछ होता नहीं, आतंक यह साकार !
सुनसान कारागार !!!

वह सुनो, हैं बज गए दो,
यह गुंजाता-सा तिमिर को
तीव्र स्वर में कह उठा—“सब ठीक” पहरेदार !
सुनसान कारागार !!!

नींद तो आती नहीं है
 और साथी भी नहीं हैं
 याद उन की कर रही है विकल बारम्बार ।
 सुनसान कारागार !!!

(७)

जरा जो मुँद जाते दृग-कोश
 बदल जाता सारा संसार !
 वहीं खिंच जाता घर का चित्र,
 वही भाई-बहनों का प्यार,
 वही सरिता, वे ही उद्यान,
 वही जीवन दुख-सुख के गान,
 वही सब प्रिय मित्रों के साथ,
 स्नेह के मृदु आदान प्रदान
 वही आग्रह रहने का साथ,
 वही माता का सरस दुलार,
 न फिर से रण जाने की बात
 और मेरा हलका स्वीकार,
 अचानक खुल जाते दृग-द्वार
 वही फिर आगे कारागार !
 भयानक भीषण कारागार !!!

(८)

कुछ बिना दोष कुछ बिना बात,
 होता था भीषण कशाघात !
 क्षर क्षर क्षरती थी रक्तधार,
 आगे करता करता प्रहार
 जल्लाद स्वयं भी उठा कांप
 निज उस की निर्दयता निहार !
 जब खत्म हुआ यह प्रेत-नृत्य
 उन नीचों का अति घणित कृत्य,
 तब मरण-प्राय उस बन्दी के
 यों प्राण उठें फिर से पुकार—
 “जल्लाद ! अभी से गए हार ?”

(६)

टूट कर है गिर गई प्राचीर,

खुल गए स्वयमेव सारे द्वार,
भग गए सब दूर पहरेदार !

हो गया सौ टूक कारागार !

किन्तु बाहर शान्ति का शुभ प्रात

मिट चला है रात्रि हाहाकार;
मिट चला है घोर अत्याचार !
हो गया सौ टूक कारागार !

आज दुख से हीन सुखमय देख !

विश्व मानो शान्त पारावार;
दूर पग के लौह-बन्धन भार !
हो गया सौ टूक कारागार !
हो गए सब दूर अत्याचार !

—०—

(२)
हैदराबाद में सत्याग्रह क्यों ?

नींव विश्वासघात पर

है दरावाद की निजाम रियासत की नींव विश्वासघात पर पड़ी थी ।

यों तो पितृघात, भ्रातृघात, मित्रघात और स्वामिघात के उदाहरणों से मुगल साम्राज्य का इतिहास ओतप्रोत है, परन्तु मानवता-घात का वैसा उदाहरण मिलना कठिन है ।

अब से लगभग पीने तीन सौ साल पहले, सन् 1712 में दिल्ली के मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह ने अपने प्रमुख सरदार नवाब मीर कमरुद्दीन अली खां निजामुलमुल्क आसफजाह को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा था । ये औरंगजेब के सेनापति ग़ाज़ीउद्दीनखां फिरोजजंग के सुपुत्र थे और अपने वंश का सम्बन्ध हज़रत मुहम्मद साहब के स्वशुर, प्रथम खलीफा अबूबकर, से जोड़ते थे । उन्हीं दिनों बिहार के निवासी दो संयद-बन्धु मुहम्मदशाह के अत्यन्त मुहलगे थे । वे आसफजाह को नापसंद करते थे । उन्होंने ही आसफजाह को सत्ता के केन्द्र से दूर रखने के लिए दक्षिण भिजवाया था ।

जब औरंगजेब के तीनों पुत्र अपने पिता के चरणचिन्हों पर चलते हुए राज्य के लिए आपस में लड़ने लगे, तब बड़ा पुत्र मुअज्जम अपने भाइयों के खून से हाथ रंग कर गद्दी पर बैठा । अन्य सब सरदारों की अपेक्षा अपनी चाटुकारिता, चुगल-खोरी और राजनीतिक जोड़-तोड़ की चतुराई के कारण संयद बन्धु बादशाह के इतने निकट आ गए कि वे उसे अपने हाथ की कठपुतली समझने लगे और 'राजनिर्माता' (किंग-मेकर) बन बैठे । उन्होंने एक वर्ष में ही दिल्ली के तख्त पर चार बादशाह बिठाए और उतारे ।

उन्हीं दिनों की बात है । जब मुहम्मदशाह के समय नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया तो उसने सआदतख़ां और आसफजाह की कमान में सेना सौंप कर उन्हें नादिरशाह से लोहा लेने के लिए भेजा । मुगलसेना नादिरशाह की सेना से संख्या में कहीं अधिक थी, पर सरदारों की आपसी फूट इतनी जबरदस्त थी कि सब एक दूसरे को नीचा दिखाने में लगे रहते थे । नादिरशाह पहले 50 लाख रुपया लेकर

बिना लड़े वापिस जाने को तैयार था। पर ये दोनों सरदार अन्दर ही अन्दर उससे मिल गए और उसे बीस करोड़ रु० देने का वायदा किया। इन्हें आशा थी कि उसमें से काफी बड़ी राशि पुरस्कार-स्वरूप इन्हें भी मिल जाएगी। ऐसी हालत में मुगल सेना को हारना ही था। पर शाही खजाने में बीस करोड़ रु० नहीं निकला। तब नादिरशाह ने इन दोनों सिपहसालारों को डुलाकर इनके विश्वासघात के लिए इनकी भर्त्सना की और 'तुम्हें अल्लाह कभी माफ नहीं करेगा', यह कह कर उनकी दाढ़ियों पर थूक दिया।

उसके बाद नादिरशाह ने दिल्ली में कत्लेआम किया और हीरे जवाहरात से जड़ा मयूर सिंहासन, कोहेनूर हीरा और लूट मार कर जितना सामान अपने साथ ले जा सकता था, लेकर वह वापिस अफगानिस्तान चला गया।

उसके बाद मुहम्मदशाह ने भी सआदतखाँ और निजामुलमुल्क को उनके विश्वासघात के लिए बुरी तरह लताड़ा। नादिरशाह से प्रताड़ित और मुहम्मदशाह से अपमानित होकर इन दोनों ने सोचा कि इस जिल्लत की जिंदगी से तो मर जाना अच्छा। निजामुलमुल्क अपने निवासस्थान पर गए और जहर खाकर धड़ाम से जमीन पर गिर पड़े। सआदत खाँ का दूत यह सब देख रहा था। उसने जाकर अपने मालिक को खबर दी कि निजामुलमुल्क तो जहर खाकर मर गए। तब सआदत खाँ ने भी तेज जहर खाकर तुरन्त अपने प्राण त्याग दिए।

इधर सआदत खाँ के मरते ही चमत्कार हो गया। निजामुलमुल्क जी उठे। वे बाद में जीवन भर अपने मित्रों के समक्ष हमेशा इस बात पर गर्व करते रहे कि मैंने उस घड़े के बच्चे सआदत खाँ को कैसा वेवकूफ बनाया था।

अब दिल्ली में टिक सकना सम्भव नहीं था इसलिए निजामुलमुल्क दिल्ली से भाग गए। नौकरों से कह दिया कि शिकार पर गए हैं।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद, दिल्ली दरबार फूट, वैमनस्य और षड़यन्त्रों का अखाड़ा बन कर अपने सरदारों को नियन्त्रण में रखने में असमर्थ बन चुका था। उधर दक्षिण में छत्रपति शिवाजी की भी मृत्यु हो गई तो कोई प्रतिद्वन्दी नहीं रहा। अच्छा सुयोग पाकर आसफजाह ने दिल्ली दरबार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। मुहम्मदशाह ने हैदराबाद के कोतवाल मुबारिक खाँ को सेना लेकर आसफजाह को सबक सिखाने भेजा। परन्तु आसफजाह ने चन्द्रसेन जाधव और शम्भा जी निम्बालकर नामक मराठा सरदारों को अपने साथ मिलाकर मुबारिक खाँ को मार डाला और सन् 1724 में अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी।

आंतरिक फूट और मरहटा शक्ति के प्रबल आघातों से मुगल साम्राज्य जर्जर होकर अस्तायमान हो चला था। मरहठों ने दक्षिण के 6 सूबों से चौथ वसूलनी शुरू कर दी। निजामुलमुल्क आसफजाह मरहठों के पंजे से छूटने के उपाय सोचता रहा।

88/हैदराबाद में सत्याग्रह क्यों ?

उसने बुरहानपुर जाकर मोर्चा लेने की सोची। पर बाजीराव ने उसका इरादा भांप कर मार्ग में ही उसे घेर कर परास्त कर दिया। तब आसफजाह ने मरहटों से सन् 1728 में संधि की जिसके फलस्वरूप चौथ और सरदेसमुखी वसूल करने का अधिकार तो मरहटों के पास रहा ही, दक्खिन के प्रमुख किले भी उन्हीं के पास रहे।

23 मार्च, सन् 1739 को बाजीराव पेशवा ने दिल्ली पर भी आक्रमण किया और यहां से एक हजार घोड़े तथा अन्य बहुत सा सामान लूट वहु कर लौट गया। पीछे से निजामुलमुल्क ने पेशवा पर चढ़ाई कर दी। पर यहां भी आसफजाह को परास्त होना पड़ा, और मरहटों को 50 लाख रु० तथा मालवा और नर्मदा-चम्बल का दोआबा देकर जान छोड़नी पड़ी। मरहटों ने संधिपत्र पर यह प्रतिज्ञा भी लिखवा ली कि हिंदू प्रजा को निजाम रियासत में कभी उत्पीड़न का शिकार नहीं बनाया जाएगा।

सन् 1748 में निजामुलमुल्क आसफजाह की मृत्यु हो गई। उधर मरहटा सेनापति शिन्दे और हरिपन्त फडके की भी मृत्यु हो गई। तब निजाम के उत्तराधिकारियों ने 1792 में फिर मरहटों से निजात पाने के लिए सवा लाख फौज लेकर हमला किया। पर मुगलसेना को फिर भुंह की खानी पड़ी और तीन करोड़ रु० देना पड़ा। उसके बाद सन् 1795 में निजाम ने मरहटों पर एक बार फिर आक्रमण किया, पर 3 करोड़ 10 लाख रु० देकर तथा अच्छी आध वाले कुछ और इलाके देकर मरहटों से जान छोड़नी पड़ी।

तब तक अंग्रेज भी भारत के राजनीतिक क्षितिज पर उभर आए थे और बड़ी तेजी से अपने पांव फैलाते जा रहे थे। निजाम ने अपने यहां से अंग्रेजी सेना को निकाल कर फ्रांसीसी सेना रख ली। अंग्रेजों को यह बात सहन नहीं हुई। यूरोप में नेपोलियन का वर्चस्व बढ़ता जा रहा था। भारत में पांडीचेरी और चन्दननगर में फ्रांसीसी सत्ता स्थापित हो चुकी थी। मैसूर नरेश टीपू सुलतान का नेपोलियन से पत्र-व्यवहार चल रहा था। मारीशस पर फ्रांसीसियों का कब्जा था और भारत पर आक्रमण की दशा में मारीशस के टापू से फ्रांसीसी सेना को बहुत सहायता मिलने वाली थी।

18वीं सदी के अस्त होने के साथ नेपोलियन का भाग्य भी अस्त हो गया। मारीशस पर भारतीय सेना की सहायता से अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। टीपू सुल्तान मारा गया। निजाम को भी संधि में बांध कर अंग्रेजों ने फ्रांसीसी सेना के बजाय अंग्रेज सेना रखने पर बाध्य कर दिया। हैदराबाद से सटे सिकंदराबाद में अंग्रेजी सेना की छावनी बन गई।

सन् 1857 की राज्यक्रान्ति में सिख रियासतों की तरह निजाम रियासत ने भी धन-जन से अंग्रेजों की भरपूर सहायता की। उसकी एकज में अंग्रेजों ने रायचूर और नलदुर्ग का दोआब देकर 50 लाख रुपया भी, जो निजाम से अंग्रेजी सेना पर खर्च के नाम पर लेना था, माफ कर दिया। उसी साल निजाम नसीरुद्दौला के मरने पर आसफउद्दौला गद्दी पर बैठा। सन् 1869 में उसका पुत्र महबूब अली खा गद्दी पर बैठा। उसके बाद सन् 1884 में महबूब अली का पुत्र उस्मान अली गद्दी पर बैठा। उस्मान अली के शासनकाल में ही हैदराबाद में आर्य सत्याग्रह की नीवत आई।

• • •

सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य

उस्मानअली से पहले के बादशाह प्रायः उदार हृदय के थे और अपनी प्रजा में हिन्दू मुसलमान का भेद नहीं करते थे। रियासत के उच्च और उत्तरदायित्व-पूर्ण पदों पर प्रायः हिन्दुओं की नियुक्ति होती थी। उस्मानअली के शासन के भी प्रारम्भिक वर्षों में साम्प्रदायिक विद्वेष के उदाहरण नहीं मिलते।

1857 के बाद अंग्रेजों ने अपनी रणनीति बदल दी। पहले वे किसी न किसी तरह देसी रियासतों को अपने राज्य में मिलाकर अपना साम्राज्यवादी पंजा फैलाते रहे थे। इस प्रकार जिन राजाओं के राज्य छिन गए थे, उन्हीं राजाओं ने मिलकर 1857 की राज्यक्रान्ति में हिस्सा लेकर राजनीतिक विस्फोट किया था। अब अंग्रेजों ने देसी रियासतों को खत्म करने के बजाय उन्हें अन्य तरीकों से अपना वशबद बनाए रखने की नीति अपनाई। इसी नीति के अन्तर्गत देसी रियासतों के राजकुमारों को अंग्रेजी ढंग से शिक्षा दीक्षा देने की व्यवस्था की गई।

भारतवासियों को मानसिक दृष्टि से गुलाम बनाने के लिए सैकाले की अंग्रेजी माध्यम वाली शिक्षा प्रणाली प्रचलित की गई। अंग्रेजी ढंग के स्कूल कालेज खोले गए। इन स्कूल कालेजों से पढ़ कर निकले युवक सरकारी सविस को जिंदगी की बरकत समझने लगे और अपने वैष-विन्यास, रहन-सहन तथा बोलचाल में अंग्रेजों की नकल करने लगे। भारत के आर्थिक शोषण से यूरोप में पनपी औद्योगिक उन्नति के कारण भारतवासियों में जहां आत्महीनता की भावना आई, वहां यूरोपीय जातियों के अपने से श्रेष्ठ होने की बात भी मन में समाई। अंग्रेजों ने इतिहास की पुस्तकों में यही पढ़ाना शुरू किया कि कृष्ण वर्ण की जातियां गुलाम रहने और शासित होने के लिए पैदा हुई हैं और श्वेत वर्ण की जातियां स्वामी बनने और शासन करने के लिए पैदा हुई हैं।

पर औद्योगिक क्रांति के कारण यूरोप में आई नई राजनीतिक चेतना की लहर भी भारतवासियों को छूने लगी। पाश्चात्य राजनीतिक चेतना के संपर्क से इस देश में भी ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, देव समाज और थियोसोफिकल

सोसायटी जैसी नई प्रगतिशील संस्थाओं का जन्म हुआ। उसी काल में, सन् 1875 में ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज नाम से एक नए आन्दोलन को जन्म दिया, जो बाह्य रूप से तो ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज आदि जैसा ही एक 'समाज' प्रतीत होता था, परन्तु उसकी आन्तरिक भावभूमि विदेशी होने के बजाय सर्वथा स्वदेशी थी।

ऋषि दयानन्द प्रगतिवादी विचारों और अन्धविश्वासों के निराकरण की दृष्टि से यूरोप से भी बहुत आगे थे, परन्तु भारत के प्रचीन गौरव से इतने पगे थे कि संसार के प्राचीनतम ग्रंथ वेद को उन्होंने अपने आन्दोलन का मुख्य आधार बनाया। यह इस देश का सौभाग्य था कि ऋषि दयानन्द को अंग्रेजी नहीं आती थी, इसलिए वैचारिक दृष्टि से उन पर पश्चिम की नकल का आरोप नहीं लगाया जा सकता। आश्चर्य की बात है कि पश्चिम का बुद्धिजीवी वर्ग देवी-देवताओं की उपासना, जड़पूजा तथा जाति-पांति के भेदभाव के कारण हिन्दुओं के दकियानूसीपने का उपहास किया करता था, उस उपहास में ऋषि दयानन्द भी पीछे नहीं थे, पर वे इन सब अन्धविश्वासों का खण्डन वेद के आधार पर करते थे, जबकि उनसे पहले के पंडित वेदों का नाम लेकर उन कुरीतियों का समर्थन किया करते थे। ऋषि दयानन्द ने स्वभाषा, स्वधर्म, स्वदेश, स्ववेश, स्वराज्य, स्वसंस्कृति, आदि पर इतना अधिक जोर दिया कि उसके कारण देश का एक बड़ा वर्ग परमुखापक्षी होने के बजाय आत्मगौरव से दीप्त हो उठा। ऋषि दयानन्द ने भारत के 'स्व' पर पड़े आवरण को हटा कर उसके यथार्थ स्वरूप को उजागर कर दिया।

इधर 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई, जिसका आदि प्रवर्तक सर ए० ओ० ह्यूम नामक एक अंग्रेज ही था। उसका असली उद्देश्य यही था कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग नई राजनीतिक चेतना की लहर के कारण कभी-कभी अपना आन्तरिक गुबार निकालने का एक मंच पा जाएं और अन्ततः ब्रिटिश राज्य को ही भारत के लिए हितकारी और ईश्वर के वरदान के रूप में समझते रहें। पर धीरे-धीरे कांग्रेस में भी राष्ट्रीय चेतना का स्वर उभरने लगा और उसमें भी नरम और गरम दल बन गए। नरम दल का उद्देश्य सदा यह रहा कि अंग्रेजों की खुशामद करके मिश्रा के रूप में जो कुछ मिल जाए उसे स्वीकार करें और सन्तुष्ट रहें। उधर गरमदल धीरे-धीरे भारत के सामने स्वराज्य प्राप्ति का लक्ष्य रखने लगा। लोकमान्य तिलक ने जब 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'—यह मंत्र दिया, तो देशवासियों की धमनियों में नया खून बहने लगा। पर फिर भी पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने का प्रस्ताव कांग्रेस में सन् 1930 से पहले पास नहीं हो सका।

उधर अंग्रेजों ने हिन्दुओं, सिखों और मुसलमानों को राजभक्त बनाए रखने के लिए नई नई तरकीबें चलीं। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी और सर सैयद अहमद खान के माध्यम से अंग्रेजों ने मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग-थलग रखने का प्रयत्न किया और सिखों को खालसा कालेज के माध्यम से। मुसलमानों और सिखों में हिन्दुओं से अलगाव की भावना भरने में, हिन्दुओं के

का भय दिखाकर अल्पसंख्यक के नाते उनमें अपनी अलग पहचान बनाए रखने का आग्रह पैदा करने में, जितना काम उक्त दोनों संस्थाओं ने किया है, उतना और किसी ने नहीं किया। बाद में पाकिस्तान और खालिस्तान के विचार की जन्मदात्री भी यही दोनों संस्थाएँ बनीं। सिखों में हिन्दुओं से अलगाव की भावना भी अंग्रेजों ने ही भरी, जबकि तत्त्वतः सभी तरह से वे हिन्दू समाज के ही अंग थे।

सन् 1886 में ही पंजाब में डी ए वी आंदोलन प्रारम्भ हुआ जिसने शिक्षा की दृष्टि से पूर्व और पश्चिम का समन्वय किया, परन्तु आर्य समाज से सम्बन्धित होने के कारण उसकी भावभूमि सदा राष्ट्रीय रही।

इस प्रकार 18 वीं सदी के उत्तरार्ध में देश में तीन विचारधाराएँ और तीन वर्ग स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं—एक अंग्रेज भक्त राजा महाराजा जमींदार तबाब और राय बहादुर, दूसरे पढ़े लिखे अंग्रेजीदा नरमदलीय; तीसरे गरमदलीय श्रान्तिकारी। यह कहना सही नहीं होगा कि किसी एक संस्था में किसी एक ही विचार धारा के लोग थे, प्रत्युत कहना चाहिए कि उस युग में देश की प्रत्येक संस्था में इन तीनों प्रकार की विचारधाराओं के लोग शामिल थे—किसी में कुछ कम, किसी में कुछ ज्यादा।

परन्तु लोकमान्य तिलक के अन्तिम सांस लेने के बाद जब कांग्रेस की बाग-डोर महात्मा गांधी के हाथ में आई, तब देश के राजनीतिक परिदृश्य में अचानक भारी परिवर्तन हुआ। महात्मा गांधी सन् 1914 के विश्वयुद्ध में अंग्रेजों के साथ थे, फौज में भर्ती होने के लिए स्वयं सेवक तैयार करने से भी नहीं चूके थे और उन्होंने उस समय अंग्रेजों को सलाह दी थी कि वे भारत की हुकूमत हैदराबाद के निजाम को सौंप जाएँ और पूरे मन और पूरी शक्ति से जर्मनी से लड़ें, एवं युद्ध में विजयी होकर जब आएँ तो पुनः भारत की हुकूमत निजाम से ले लें—क्योंकि निजाम हैदराबाद उनका ऐसा विश्वस्त साथी है कि वह कभी उन्हें धोखा नहीं देगा। महात्मा गांधी के इस कथन पर वीर साबरकर ने तुनककर कहा था कि अंग्रेज भारत की हुकूमत निजाम को सौंप कर क्यों जाएँ, नेपाल के हिन्दू नरेश को सौंप कर क्यों न जाएँ, वह भी तो अंग्रेजों का उतना ही विश्वसनीय साथी है।

इन दोनों महापुरुषों के उक्त कथन उन दोनों की विचार-पद्धति के अन्तर के द्योतक हैं। उन्हीं दिनों महात्मा गांधी ने उस्मानिया विश्वविद्यालय को 'प्रथम राष्ट्रीय विश्वविद्यालय' (फर्स्ट नेशनल यूनिवर्सिटी) कहा था क्योंकि उसने प्रथम कक्षा से लेकर स्नातकोत्तर कक्षाओं तक सब विषयों की शिक्षा का माध्यम उर्दू को बना दिया था और उर्दू में सब पाठ्य पुस्तकें तैयार कर दी थीं। आश्चर्य की बात है कि महात्मा गांधी ने गुरुकुल कांगड़ी को 'प्रथम राष्ट्रीय विश्वविद्यालय' के विरुद्ध

से विभूषित नहीं किया, जबकि गुरुकुल काँगड़ी ने उस्मानिया यूनिवर्सिटी से कहीं पहले स्नातकोत्तर कक्षाओं तक सब विषयों का माध्यम हिन्दी को बनाकर और हिन्दी में पाठ्य पुस्तकें तैयार करके मैकाले का मुंह काला कर दिया था।

इसका अर्थ इतना ही है कि महात्मा गांधी की दृष्टि से हिन्दू या मुसलमान होने का कोई विशेष महत्व नहीं था, बल्कि देश की राजनीति में मुसलमानों को शामिल करने के लिए वे बहुसंख्यकों की उपेक्षा करके अल्पसंख्यकों की यथासम्भव सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करना अपना कर्तव्य समझते थे। बाद में तो महात्मा गांधी का दृष्टिकोण यह भी रहा कि स्वराज्य का अर्थ है अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाएँ क्योंकि अंग्रेज विदेशी हैं, भले ही भारत में मुसलमानों का राज्य हो जाए, क्योंकि मुसलमान विदेशी नहीं, इसी देश के निवासी हैं।

सन् 1914 का विश्वयुद्ध जब अंग्रेजों की विजय के साथ समाप्त हुआ, तब महात्मा गांधी को आशा थी कि हमने अंग्रेजों की जितनी सहायता की है उसके बदले अंग्रेज भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य या उससे मिलता-जुलता कोई पुरस्कार अवश्य देंगे। परन्तु जब विजय के तुरन्त पश्चात् भारत को मिला जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड, तब महात्मा गांधी अन्दर ही अन्दर तिलमिला उठे। उन्होंने सत्य और अहिंसा पर आधारित असहयोग आन्दोलन की घोषणा कर दी, खिलाफत का विगुल बजा दिया और देशवासियों को आश्वासन दिया कि मैं एक साल के अन्दर अन्दर स्वराज्य दिलवा दूंगा।

एक साल के अन्दर स्वराज्य ?

क्या यह सम्भव था ? क्या महात्मा गांधी के पास कोई जादू की छड़ी थी ?

जो भी हो, उस समय तो महात्मा गांधी का जादू चल ही गया। हिन्दू मुसलमान दोनों भारी संख्या में गांधी की आंधी शामिल हो गए। हिन्दुओं के सामने देश की आजादी का स्वप्न था। सब सोचते थे कि केवल एक साल की ही तो बात है, चाहे जितने कष्ट सहने पड़ें, सब सह लेंगे। आखिर एक साल के बाद तो स्वराज्य मिल ही जाएगा।

पर कांग्रेस में शामिल होने के लिए मुसलमानों को ललचाने वाला आजादी का स्वप्न उतना नहीं था जितना खिलाफत का आन्दोलन था। जितने मुसलमान उस युग में कांग्रेस में शामिल हुए, उतने न उससे पहले कभी हुए, न उसके बाद कभी हुए।

खिलाफत आन्दोलन के विष-बीज

यह खिलाफत क्या बला थी ? आधुनिक पीढ़ी के नौजवान सोचते होंगे कि वह आन्दोलन अंग्रेजों के खिलाफ था इस लिए उसका नाम 'खिलाफत' आन्दोलन पड़ गया। पर वस्तुतः इस आन्दोलन का सम्बन्ध भारत से या भारत की आजादी से नहीं था। उसका सम्बन्ध तो तुर्की के खलीफा से था। भारत में राष्ट्रीय आंदोलन इस मांग को लेकर चलाया जा रहा था कि तुर्की में खलीफा कायम रहना चाहिए। तुर्की की धार्मिक रूढ़ि और राजनीतिक सत्ता खलीफा के हाथ में थी। सन् 1914 के विश्वयुद्ध में खलीफा की सहानुभूति जर्मनी के साथ थी इसलिए युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् अंग्रेज उसे हटाना चाहते थे। पर भारत की राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस सोचती थी कि खलीफा का पक्ष लेकर जहाँ हम तुर्की तथा अन्य मुस्लिम देशों की सहानुभूति अर्जित कर लेंगे, वहाँ हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन और अन्तर्राष्ट्रीय दबाव से परेशान होकर स्वयं अंग्रेज भी भारत को आजादी देने के बाध्य हो जाएंगे। कैसी बचकानी बात थी ! क्या अंग्रेज ऐसी कच्ची गोलियाँ खेले थे ?

आश्चर्य की बात यह भी है कि स्वयं तुर्की की जनता मध्यकालीन सामन्ती परम्परा के अवशेष और इस्लाम के अस्मीभूत 'फौसिल' बने खलीफा के पक्ष में नहीं थी। उन्हीं दिनों तुर्की में कमालपाशा का उदय हुआ। देखते ही देखते वह 'अतातुर्क' (तुर्की का पिता) बन गया। वह अत्यन्त प्रगतिशील विचारों का था और तुर्की को नए युग के अनुरूप ढालना चाहता था। वह खलीफा के विरुद्ध खड़गहस्त हुआ। अन्त में उसने खलीफा को तुर्की से निकल जाने का 24 घण्टे का नोटिस दिया। जनमत उसके साथ था ही। खलीफा को तुर्की से पलायन करना पड़ा। खलीफा के जाने के बाद तुर्की में उसके पक्ष में एक पत्ता तक नहीं हिला। तब यह स्पष्ट हो गया कि भारत में चलने वाला खिलाफत आन्दोलन कितने अयथार्थ पर आधारित था।

पर यह खिलाफत आन्दोलन भारत की राजनीति में कुछ ऐसे विषैले बीज बो गया कि अन्ततः देश के विभाजन के रूप में उसकी परिणति हुई। इस खिलाफत आन्दोलन ने आजादी के स्वप्न को पीछे धकेल कर खलीफा का अर्थात् किसी न किसी रूप में इस्लामी सल्तनत का सपना मुसलमानों के दिमाग में भर दिया। स्वराज्य का स्थान इस्लामी राज्य ने ले लिया। महात्मा गांधी की दृष्टि में इन दोनों में कोई अन्तर नहीं था।

तभी निजाम के दिमाग में यह सपना भरा गया कि भारत की आजादी का अर्थ है खलीफा का राज्य और आजाद भारत का पहला खलीफा सिवाय निजामुलमुल्क उस्मान अली के और कौन हो सकता है। वही उस्मान अली जिसके पूर्वज ओरंगजेब के सिपहसालार रहे और जो हजरत मुहम्मद के इबशुर के वंशज हैं। धीरे धीरे उस्मान अली भी अपने आपको इसी रूप में सोचने लगे, यद्यपि अंग्रेजों के डर के मारे वे कभी खुलकर इस रूप में सामने नहीं आए। पर उनके समस्त क्रियाकलाप उसी दिशा के सूचक हैं।

तभी निजाम के पुत्र, 'प्रिंस आफ बरार' कहलाने वाले युवराज की तुर्की के खलीफा की नीलोफर नाम की लड़की से शादी हुई, तुर्की टोपी को और अचकन तथा चौड़ी मोहरी के पजामे को (जो आज पाकिस्तान की नेशनल ड्रेस है) रियासत की सरकारी पोशाक घोषित किया गया, अरब के सैनिकों को निजाम का अंगरक्षक नियुक्त किया गया, उर्दू को राजभाषा बनाया गया, जबकि वह रियासत के किसी भी भाग की भाषा नहीं थी, और सभी प्रशासनिक पदों पर अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के पढ़े युवकों को नियुक्त किया जाने लगा। जो निजाम रियासत कभी साम्प्रदायिक विद्वेष से रहित मानी जाती थी अब वही साम्प्रदायिकता के बशीभूत होकर अपनी 88 प्रतिशत हिन्दू प्रजा को गैर समझ लगी।

पाकिस्तान के जनक मुहम्मद अली जिन्ना पहले कांग्रेस में शामिल थे और सन् 1916 के नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन में शामिल भी हुए थे। उसके बाद खिलाफत की नाव पर सवार होकर मौलाना मुहम्मद अली कांग्रेस के अध्यक्ष बने और अलीबन्धु कांग्रेस में दनदनाने लगे, तब जिन्ना ने महात्मा गांधी से कहा भी कि ये दोनों राष्ट्रवादी नहीं बल्कि कट्टर साम्प्रदायिक व्यक्ति हैं, पर महात्मा गांधी मुहम्मद अली और शौकत अली को अपनी बायें और दायें मुजा कहते रहे।

जब मौ० मुहम्मद अली की अध्यक्षता में काकिनाडा में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, तब काकिनाडा आन्ध्रप्रदेश में होने के कारण हैदराबाद रियासत के लोगों ने उसमें विशेष रूप से भाग लिया। कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से, जिसे उस समय 'राष्ट्रपति' कहा जाता था, मौलाना मुहम्मद अली ने अपनी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का स्पष्ट परिचय दे दिया। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा: "एक हकीर से हकीर मुसलमान मेरे लिए महात्मा गांधी से बढ़कर है, क्योंकि वह इस्लाम का पैरोकार है।" दूसरी महत्वपूर्ण बात अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने यह कही: "अछूतों की समस्या का देश में रोना रोया जाता है। इस समस्या का समाधान बहुत आसान है। इस समय देश में 8 करोड़ अछूत हैं, उनमें से 4 करोड़ अछूत इसाई बन जाएं और 4 करोड़ मुसलमान बन जायें। समस्या समाप्त हो जाएगी। इस काम में मेरे एक धनी मित्र मदद करने को तैयार हैं (उनका इशारा हिज हाइनेस सर अगाखां की तरफ था।)"

इसके बाद सर आगाख़ां के अनुयायी गांव-गांव में फैल गए और उन्होंने हरिजनों को तरह तरह के प्रलोभन देकर इस्लाम की दीक्षा देनी शुरू कर दी। उन्होंने हजारों अछूतों को मुसलमान बना लिया। इस संकट की ओर किसी कांग्रेसी नेता ने ध्यान नहीं दिया। पर असली राष्ट्रवादी लोग और आर्य समाज के स्वयं सेवक इस अनर्थ को बदलित नहीं कर सके। उन्होंने मुसलमान बने अछूतों को शुद्ध करके वापिस हिंदू बनाना शुरू कर दिया। यह एक नई प्रक्रिया थी, जिससे अब तक न मुसलमान परिचित थे, और न स्वयं हिंदू ही। अब तक सदा 'वन वे ट्रैफिक' चलता रहा था। जो हिंदू मुसलमान बन जाते थे उन्हें वापस अपने पूर्वजों के धर्म में दीक्षित करने वाला कोई नहीं नहीं था। आम पौराणिक हिन्दू तो यह कहने में गर्व अनुभव करता था : "भला कहीं साबुन से मल मल कर नहलाने से कोई गधा गाय बन सकता है?" पर जब आर्य समाजी तर्क देते थे कि "यदि गधा गाय नहीं बन सकता, तो गाय गधा कैसे बन सकती है? यदि गाय गधा बन सकती है, तो गधा भी गाय बन सकता है।" इस तर्क का किसी के पास कोई उत्तर नहीं था। यहीं से आर्य समाज निजाम रियासत के हुक्मरानों की दृष्टि में खटकने लगा। ज्यों ज्यों आर्य समाज का शुद्धि आन्दोलन स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में राष्ट्रव्यापी रूप ग्रहण करता गया, त्यों त्यों भारत भर के मुसलमान आर्यसमाज को अपना शत्रु नम्बर एक समझने लगे।

भारत के मुस्लिम नेता जहाँ कांग्रेस की आड़ में तुर्की के खलीफा और अरब देशों के सहयोग से भारत में इस्लामी सल्तनत का सपना ले रहे थे, वहाँ इसके लिए पूरी तरह से जाल भी बिछा रहे थे। अधिकांश कांग्रेसी नेता एक साल में स्वराज्य प्राप्त करने के दिवास्वप्न में इतने मदहोस थे कि उन्हें वह जाल दिखता नहीं था। उन्हीं दिनों कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से मौलाना मुहम्मद अली ने अफगानिस्तान के बादशाह अमानुल्ला को एक गुप्त पत्र भेजकर भारत पर आक्रमण करने को उकसाया और लिखा कि "तुम्हारे आक्रमण करते ही तुर्की का खलीफा भी भारत पर आक्रमण करेगा, जर्मनी और रूस तुम्हारा साथ देंगे और इस तरह हम हिन्दुस्तान को अंग्रेजों के पंजे से छुड़ा लेंगे—भारत में इस्लामी हुकूमत कायम हो जाएगी।"

यह गुप्त पत्र किसी तरह स्वामी श्रद्धानन्द के हाथ लग गया। उन्होंने अपने अंग्रेजी अखबार 'लिबरेटर' में उसे छाप दिया। उससे कांग्रेसी हलकों में तहलका मच गया। सब पूछने लगे "यह क्या?" मौलाना मुहम्मद अली ने मायूमियत से जवाब दिया—“मैंने तो महात्मा गांधी को दिखाकर यह पत्र अमानुल्ला को भेजा था और गांधी जी ने अपने हाथ से उसमें संशोधन किए थे।” सब कांग्रेसी नेता स्तब्ध, पर सब चुप, किसी की बोलने की हिम्मत नहीं हुई।

पर अंग्रेज चौकन्ने हो गए। फलस्वरूप अफगानिस्तान में क्रांति के माध्यम से अमानुल्ला और उसका परिवार मार दिया गया। बच्चासक्का अफगानिस्तान की

गद्दी पर बैठ गया। उधर अतातुर्क कमाल पाशा तुर्की से खलीफा को निकाल ही चुका था। जर्मनी अपनी पराजय के घाव सहला रहा था। यों इस्लामी हुकूमत की सारी योजना फेल हो गई। महात्मा गांधी के 'एक साल में स्वराज्य दिलवाने' के गुब्बारे में से भी फूंक निकल गई। तब महात्मा गांधी के पास इसके सिवाय कोई चारा नहीं रहा कि वे चौरीचौरा काण्ड का बहाना बनाकर भाण्डा फोड़ दें। उन्होंने चौरीचौरा में हिंसा के कारण सत्याग्रह आन्दोलन स्थागित कर दिया।

पर खिलाफत आन्दोलन भारत के मुसलमानों के मन में जो बीज बो गया था, वह आसानी से समाप्त होने वाला नहीं था। 1923 में केरल में मोपला काण्ड हुआ जिसमें मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचार किये। तभी कोहाट, बन्नु और सहारनपुर आदि में हिन्दू मुस्लिम दंगे हुए जिनमें मुसलमानों का बहुशी-पना खुलकर सामने आया। अन्त में सन् 1926 में स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान हुआ।

इस्लामी सल्तनत का स्वप्न

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत के राजनीतिक मंच पर घटित यह इतिहास जहां रोमांचक है वहां दर्दनाक भी है। इस इतिहास को सही रूप में राष्ट्रवासियों के समक्ष नहीं आने दिया जाता। इस सारे इतिहास में निजाम का क्या रोल रहा, इसका 'इदमित्थम्' वर्णन करना कठिन है, परन्तु हिन्दुओं का दमन करके वह औरंगजेब के पथ पर चल रहा था, इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। नीचे दी गई तालिका के आँकड़े स्वयं बोलते हैं। उस समय हैदराबाद रियासत में गजेटेड अफसरों की संख्या इस प्रकार थी—

विभाग	हिन्दू	मुसलमान
सेक्रेटरियट	16	54
अर्थ विभाग	15	26
राजस्व विभाग	20	196
न्याय विभाग	12	136
पुलिस और जेल	13	40
शिक्षाविभाग	53	183
स्वास्थ्य विभाग	41	45
पी० डब्ल्यू० डी०	34	62
विविध	40	126

छोटे पदाधिकारियों में मुसलमानों की संख्या और भी अधिक थी। सरकारी सेवाओं में हिन्दुओं की संख्या किस प्रकार घटती गई, उसका उदाहरण भी देखिए—

	सेना व पुलिस	शासन
1910 में		
हिन्दू	37179	73094
मुसलमान	62873	7501
1920 में		
हिन्दू	14934	13228
मुसलमान	28743	25424
1930 में		
हिन्दू	5929	16094
मुसलमान	54288	60223

इस प्रकार मोटी मोटी तनखाहों पर जो अधिकारी रखे गए, वे सब के सब मुसलमान तो थे ही, रियासत के बाहर के भी थे, और रियासती प्रजा के साथ उनकी कोई सहानुभूति नहीं थी। 88 प्रतिशत हिन्दू जनता उनसे न्याय की आशा नहीं कर सकती थी।

हैदराबाद की रियासत सबसे धनी रियासत मानी जाती थी और स्वयं निजाम संसार के धनपतियों में अग्रगण्य माने जाते थे। पर रियासत का धन कहां खर्च होता था, यह निजाम के द्वारा दी जाने वाली दान की निम्न राशियों से विदित होता है—

लन्दन कब्रिस्तान	पौ० 10,000	कुरान का अंग्रेजी		
„ मस्जिद	„ 5,00,000	अनुवाद	रु.	8,000
„ अस्पताल	„ 1,000	औलिया दरगाह	रु.	15,000
मीना अस्पताल	„ 50	हाजी अब्दुलरहीम	रु.	500
फिलस्तीन के मुसलमान	„ 530	तुर्की का पूर्व सुलतान	रु.	5,000
फिलस्तीन की मस्जिद	„ 15,000	विश्व भारती में		
मदीना	„ 120	अरबी चेयर	रु.	1,60,000
नज्द रिलीफ	रु० 90,000	जामिया मिलिया		
बलोचिस्तान	रु. 1,000	दिल्ली	रु.	50,000
दिल्ली तिब्बती अस्पताल	रु. 10,000	अलीगढ़ मुस्लिम		
मुस्लिम विधवा फण्ड		यूनि०	रु.	10,00,000
दिल्ली	रु. 5,000	पानीपत मुस्लिम		
निजामुद्दीन दरगाह	रु. 5,000	स्कूल	रु.	20,000
अजमेर शरीफ	रु. 2,000			

98/हैदराबाद में सत्याग्रह क्यों ?

कुछ स्थानीय संस्थाओं को दिया जाने वाला दान

	रु०		रु०
अब्दुल अली मुंसिफ	1,362	शाहनामा की व्याख्या	410
सहीफा अखबार	2,500	दीनियात जरनल	1,625
दरगाह औरंगाबाद	1,200	मयरिसियां	2,000
सरदार अजमतुल्ला	5,882	परमनी की मस्जिद	6,100
गुलबर्गा मुस्लिम अनाथालय	36,639	शाहमिर्जा बेग	6,000
अनाथालय कलक	900	श्रीमती मिर्जा बेग	3,600
नबाब हैदरगंज	2,000	दीनियात की किताबें	462
उस्मानिया यूनि० का वृत्तपत्र	1,134	सिराजुल हुसैन	400
सूबा दक्षिण अखबार	1,410	विभिन्न मस्जिदें	1,500
सम्पादक इस्लामिया कल्चर	250		

रियासत से बाहर के मुस्लिम अखबारों और मुस्लिम संस्थाओं को दान

मुस्लिम आउटलुक, लाहौर	रु०	5834
पेसा अखबार	"	3334
अंजुमन तरकिए उर्दू	"	50,000
ख्वाजा कमालुद्दीन	"	2800
मोहदुल इस्लाम	"	400
इंडियन न्यूज एण्ड स्टेट्स	"	2800

ध्यान देने योग्य बात यह है कि रियासत की 88.6 प्रतिशत हिन्दू जनता से वसूल किया गया टैक्स केवल इस्लाम से सम्बन्धित संस्थाओं और गतिविधियों पर ही खर्च किया जाता था। रियासत की धार्मिक संस्थाओं को कितनी सहायता दी जाती थी, उसका विवरण भी देखिए—

	मुसलमानों को	ईसाइयों को	हिन्दुओं को
वार्षिक धार्मिक सहायता	1,89,742	14,280	1,800
खास धार्मिक सहायता	2,00,642	2,460	1,344
वार्षिक वेलफेयर सहायता	5,970	—	—

इसके अलावा रियासत की ओर से एक धर्मविभाग खोला गया जिसका नाम था सीमा-अमूरे-मजहबी, जिसके सब सदस्य मुसलमान थे। यह विभाग राज्य के केवल मुसलमानों के ही धार्मिक स्थानों और मामलों का निर्णय नहीं करता था, बल्कि हिंदुओं के भी सब धार्मिक स्थान और धार्मिक मामले इसी के अन्तर्गत आते थे। इस विभाग के सब अफसर प्रत्येक बात को इस्लाम की दृष्टि से ही देखते थे। हिंदुओं को कोई मंदिर, धर्मशाला या यज्ञशाला बनानी हो, पाठशाला खोलनी हो, कोई व्यायामशाला बनानी हो, या कहीं जलसे जलूस और कथा-वार्ता या उपदेश-व्याख्यान का आयोजन करना हो, तो इसी विभाग से अनुमति लेना आवश्यक था और वह अनुमति कभी मिलती नहीं थी। इस प्रकार निरन्तर पक्षपात और भेदभाव पूर्ण व्यवहार के कारण हिंदू जनता का उत्तरोत्तर अधिकाधिक असन्तुष्ट होते जाना स्वाभाविक था।

इसके अतिरिक्त रियासत में एक खाकसार पार्टी थी जिसका मुख्य काम था हिंदुओं का धर्मान्तरण करना और हिंदू स्त्रियों का अपहरण करना। रियासत के सरकारी कर्मचारी भी इसमें खुलकर भाग लेते थे। यदि कभी इन खाकसारों के अत्याचारों की शिकायत की जाती तो उस पर कान देने वाला कोई नहीं था और यदि कभी सुनवाई होती भी, तो उल्टे शिकायत कर्ताओं को फंसा कर उन पर गलत मुकदमे करके उन्हीं को जेलों में सड़ने के लिए डाल दिया जाता था।

जिस अमूरे मजहबी का ऊपर जिक्र आ चुका है उसने जिहाद के नाम पर जब गैर मुसलमानों के कत्ल को भी धर्म करार देना शुरू कर दिया, तब तो मुसलमानों ने रियासत में हत्याओं का ऐसा तांता लगा दिया कि वह किसी भी मानव के लिए सह्य न होता। यह तो आर्यों और हिंदुओं की परम्परागत सहिष्णुता थी जिसने उन्हें 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति अपनाते से रोके रखा, अन्यथा हैदराबाद में भीषण रक्तपात हो सकता था।

आर्यसमाज की चुनौती

हैदराबाद रियासत में आर्यसमाज के आन्दोलन को चार भागों में बाँटा जा सकता है। सन् 1880 से 1930 तक प्रथम काल, सन् 1931 से 1941 तक द्वितीय काल, सन् 1942 से 1948 तक तृतीय काल और सन् 1948 के बाद चतुर्थ काल।

नवाब उस्मान अली के पिता महबूब अली खां के काल में आर्यसमाज रियासत में पहुंच चुका था। महबूब अली स्वयं उदार विचारों के थे। जब मूसा नदी में बाढ़ आई तब आर्यसमाज के स्वयंसेवकों ने जिस तरह बाढ़ पीड़ितों की सहायता की उससे प्रसन्न होकर स्वयं निजाम ने आर्य समाज के प्रधान श्री गया प्रसाद को प्रशस्तिपत्र और एक सोने की घड़ी भेंट की थी। अन्य कई मुस्लिम नवाब तथा

रियासत के प्रतिष्ठित नागरिक भी आर्य समाज के वार्षिकोत्सवों में सहर्ष सम्मिलित होते थे। नवाब जाफरजंग अमीर, नवाब इमादुलमुल्क बहादुर, डा. अधोरनाथ चट्टोपाध्याय (भारत कोकिला सरोजिनी नायडू के पिता) और श्री कृष्णमाचारी जैसे प्रभावशाली व्यक्तियों ने आर्य समाज के कतिपय उत्सवों की अध्यक्षता भी की थी। पर ज्यों ज्यों निजाम इस्लामी हुकूमत और खलीफा बनने के स्वप्न देख-लगा ल्यों ल्यों आर्य समाज उनकी आंख का कांटा बनने लगा।

सन् 1894 में रियासत में स्वाभी नित्यानन्द जी, जो उस समय आर्य समाज के उच्चकोटि के विद्वान् माने जाते थे और जिनकी अनेक रियासतों के राज दरबारों तक पहुंच थी, वैदिक धर्म के प्रचार के लिए आमंत्रित किए गए। उनके भाषण इतने युक्तियुक्त, तर्कपूर्ण और विद्वत्तापूर्ण थे कि मुसलमानों और हिन्दुओं दोनों में जो सड़िवादी कठमुल्ला लोग थे, उनको अपने पांव के नीचे से जमीन खिसकती दिखी। निजाम ने उनको रियासत से निर्वासित कर दिया। इस निर्वासन के विरोध में महाराजा बड़ौदा, महाराजा शाहपुर और महाराजा ईडर ने निजाम को तार दिये, पर निजाम ने किसी की परवाह नहीं की।

आर्य समाज रेजिडेंसी (वर्तमान सुलतान बाजार) के 12 वें वार्षिकोत्सव के दिनों में गोविन्द नायक नामक एक अव्वल ताल्लुकदार ने कृष्णा नदी के तट पर सोमयाग का आयोजन किया जिसमें पशु-बलि से पूर्णाहुति की जानी थी। आर्य समाज के विद्वानों ने पशु बलि को वेद-विरुद्ध बताकर सनातनी पंडितों से शास्त्रार्थ किया। इस शास्त्रार्थ से जनता बहुत प्रभावित हुई।

तब निजाम ने आर्य समाज की बढ़ती लोकप्रियता से क्षुब्ध होकर आर्य समाज पर प्रथम प्रहार किया और यह आदेश दिया कि निजाम राज्य की सीमा में आर्य समाज की स्थापना नहीं की जा सकती। तब "महबूब कालेज" के प्रसिद्ध विधिवेत्ता श्री रामचन्द्र पिल्ले ने इस आदेश के विरुद्ध आर्य समाज की ओर से केस लड़ा और इसे प्रजा की धार्मिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप सिद्ध किया। आखिर निजाम को झुकना पड़ा। इससे आर्य समाज की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी कि रियासत के मुख्य न्यायधीश राजा विवेश्वरनाथ, हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील श्री केशवराव कोरटकर, राजा गोविन्द प्रसाद तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति आर्य समाज के सक्रिय सदस्य बन गए।

आर्य समाज ने विपद्ग्रस्तों की सहायता के अलावा हरिजनोद्धार और शिक्षा-प्रचार का अपना कार्यक्रम भी आगे बढ़ाया। कई कन्या पाठशालाएं खोलीं, गुरुकुल और अनाथालय खोले। मानवसेवा, भ्रातृत्व और अपने धर्म तथा संस्कृति के प्रति स्वाभिमान ने धीरे धीरे आर्य समाज को इस स्थिति तक पहुंचा दिया कि वह रियासत की समस्त प्रगतिशील हिन्दू प्रजा का प्रमुख प्रवक्ता बन गया। सन् 1900 की समाप्ति के बाद बीसवीं सदी के पहले दूसरे और तीसरे दशक में रियासत का शायद ही कोई ऐसा बुद्धिजीवी हिन्दू बचा हो जो जाति के उद्धार के लिए आर्य समाज की ओर आशामरी दृष्टि से न देखता हो।

सिद्दीक दीनदार

निजाम ने इस्लाम के प्रचार में रियासत की ओर से धन-जन की सहायता के द्वार खोल ही रखे थे। तभी सन् 1929 में मौलाना सिद्दीक दीनदार नामक एक पाखण्डी मुस्लिम प्रचारक उभरा। वह अपने आपको कृष्ण का और लिंगायतों के इष्ट देव 'चन्न बसवेश्वर' का अवतार बताकर हिन्दुओं पर डोरे डालने लगा। उसने अपने शरीर के विभिन्न अंगों पर लिंगायतों के धार्मिक चिन्ह खुदवा लिये। वह मुसलमान नबावों और धनपतियों से यह कह कर पैसा ऐंठता कि इस प्रकार लाखों हिन्दुओं को मुसलमान बना लूंगा। उसने उनको विश्वास दिलाया कि एक दिन हिन्दुओं को बहकाकर मैं उनके तिरुपति, हम्पी और वेंकटरमण के मन्दिरों पर कब्जा करके उन्हें मस्जिद बना दूंगा और उन मन्दिरों का सारा धन इस्लाम के प्रचार में लगा दूंगा। उसके चेले विलोचिस्तान और अफगानिस्तान में जाकर पठानों को फुसलाकर रियासत में लाते। वे पठान हिन्दुओं को लूटते और आतंकित करते।

यह सिद्दीक दीनदार मुसलमानों से मुसलमानी वेश में मिलता और हिन्दुओं से हिन्दू अवतार के रूप में। अवतारवाद के अन्धविश्वास में जकड़ी अबोध हिन्दू जनता उसके चक्कर में आने लगी। उसने 'सरवरे आलम' नामक एक किताब भी लिखी जिसमें हिन्दू देवी-देवताओं की अत्यन्त अश्लील भाषा में खिल्ली उड़ाई गई।

आर्यसमाज के अनुयायियों को यह अनर्थ सहन नहीं हुआ। आर्यसमाज के निर्भीक उपदेशक श्री मंगलदेव ने इस अवतार का भण्डा फोड़ा और उसका खण्डन किया। उसके बाद शास्त्रार्थ महारथी श्री पं. रामचन्द्र देहलवी को सिद्दीक दीनदार के प्रभाव के निराकरण के लिए रियासत में बुलाया गया। देहलवी जी जहां इस्लाम और कुरान के आलिम थे, वहां इतने मधुरभाषी, प्रत्युत्पन्नमति (हाजिरजबाब) और सवे हुए वक्ता थे कि जब वे श्रीमुख से कुरान की आयतों का उच्चारण करते तो बड़े बड़े मौलाना दांतों तले अंगुलि दबाकर कहते—“या अल्लाह, इल्म भी किस काफिर को दिया है !”

सिद्दीक दीनदार अपने भाषणों में कहता: “मुसलमानो! जो कोई तुम्हारे धर्म, नबी और खुदा की आलोचना करे, उसे मत छोड़ो।... “जो तुम्हारे विरोधी हों उन्हें कत्ल कर दो।”.....“दुनिया में जितने भी काफिर हैं सब मुसलमानों के दुश्मन हैं। तब तक वे तुम्हारे दोस्त नहीं बन सकते जब तक मुसलमान न बन जाएं।”.....“कुरान में 500 आयतें हैं जिनमें दुश्मनों पर विजय पाने और उन्हें कत्ल करने का वर्णन है। तुम उनसे क्यों डरते हो ?”

निजाम के सरकारी अफसरों की ओर से किस प्रकार साम्प्रदायिक जहर फैलाया जाता था, उसका नमूना देखिए। अमूरे मजहबी (धर्मविभाग) के अध्यक्ष मुहम्मद अकरमुल्ला खां के हस्ताक्षरों से यह ऐलान जारी हुआ—

(क) काधिरों का क्या हुआ होगा, यह जल्दी ही पता लग जाएगा। (ख) खुदा के फजल से हम मोमिन हैं, इसलिए हम जिन्दा रहने पर गाजी और मरने पर शहीद होते हैं। (ग) आर्य समाजी हिन्दुस्तान की तमाम कौमों को मिलाकर और कुरान को जलाकर अपना मतलब निकालना चाहते हैं। (घ) धार्मिक शान्ति बनाए रखने के लिए कुछ हद तक रक्तपात जरूरी है। इस्लाम में इसी को जिहाद कहते हैं। (ङ) ऐ मुसलमानो ! जिस तरह रोजा, नमाज, हज और जकात तुम्हारा फर्ज है, वैसे ही जिहाद भी तुम्हारा फर्ज है।

श्री रामचन्द्र देहलवी के भाषणों से जहाँ सिद्दीक दीनदार की बोलती बन्द हो गई वहाँ अमूरे मजहबी की ओर से फैलाया गया आतंक भी व्यर्थ हो गया। अहमदिया जमात से हुआ उनका शास्त्रार्थ भी ऐतिहासिक रहा। सबसे बड़ी बात यह हुई कि रियासत के प्रधानमंत्री महाराजा सर किशनप्रसाद मेहरा खत्री और हिन्दू थे, पर हसन निजामी जैसे कुछ चंट नेताओं ने उन्हें बरगलाना शुरू किया और उन्हें 'महाराजा सर किशनप्रसाद चिश्ती निजामी खुमारी शाह दीवान हैदराबाद' लिखना शुरू कर दिया। महाराजा के चुप्पी साध लेने से जनता में भ्रम फैलने लगा। तब पं. जगदीश प्रसाद शास्त्री ने देहलवी जी को ले जाकर महाराजा किशन प्रसाद से भेंट करवाई। दो दिन तक इस्लाम के सम्बन्ध में बातचीत और शंका-समाधान चलता रहा। इस शंका समाधान में निजाम के दरबार के और कई बड़े बड़े अफसर भी शामिल हुए। देहलवी जी के उत्तर इतने स्पष्ट और लियाकत से भरे हुए थे कि सभी के चित्त की शंकाएं मिट गई और अन्त में महाराजा सर किशन प्रसाद ने 'हिन्दू भाइयों से खिताब' नामक लेख लिखकर यह स्पष्ट किया 'कि मैं धर्म ब जाति से शुद्ध हिन्दू हूँ।' वे महाराजा देहलवी जी से इतने प्रभावित हुए कि उसके बाद आर्यसमाज के कई वार्षिकोत्सवों में भी शामिल हुए।

इससे कट्टरपंथी वर्ग देहलवी जी से बहुत चिढ़ गया और उसने हल्लीखेड़ जिला बीदर में दिए एक भाषण के आधार पर उन पर मुकदमा चला दिया। देश भर में उसका विरोध हुआ, तो मुकदमा वापिस ले लिया गया, किन्तु उन्हें भविष्य में रियासत में न घुसने का आदेश दिया गया।

अत्यन्त सौम्य स्वभाव के धनी, दिल्ली के श्री प. चन्द्रमानु जी सिद्धान्तभूषण को भी सन् 1932 में अकारण राज्य से निर्वासित किया गया। अन्य भी जो आर्य विद्वान बाहर से धर्मप्रचार के लिए आते, उन पर निजाम की कोपदृष्टि बनी रहती।

प्रस और पत्र

रियासत की ओर से साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने वाले उर्दू के अखबारों को सहायता देने के लिए यह आदेश दिया गया कि साधारण दर से दुगनी दर पर उनकी

सैंकड़ों प्रतिमां खरीद कर सब सरकारी बिभागों को भेजी जाएं। रायटर जैसी समा-
चार एजेंसियों को भी बड़ी मात्रा में पैसा दिया जाता कि वे रियासत के विरोध में
कोई समाचार प्रसारित न करें।

देशके प्रमुख पचास पत्रों पर रियासत में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया
गया। इन प्रतिबन्धित पत्रों में मद्रास का 'हिन्दू', लाहौर का 'सर्वेण्ट्स आफ इंडिया
सोसायटी' तथा बम्बई का 'बोम्बे क्रानिकल' जैसे उदार पत्र भी शामिल थे। बाद
में, सत्याग्रह के दिनों में तो अनेक बड़े अखबारों को केवल इसीलिए पैसा दिया
जाता रहा कि वे रियासत के विरोध में कोई समाचार न छापें।

हिन्दुओं को कोई मासिक, साप्ताहिक या दैनिक पत्र निकालने की अनुमति
नहीं थी। रियासत के धन से एक 'रहबरे दकन' गामक अखबार निकलता था जिसमें
हिन्दुओं के विरुद्ध उत्तेजनात्मक बातों की भरमार होती थी। नमूना देखिए—

(1) अछूतों का कल्याण इसी में है कि वे इस्लाम ग्रहण कर लें। मूर्तिपूजा
की गिलाजत से उन्हें अपनी रक्षा करनी ही चाहिए। (2) जब तक संसार से
वेदों और मनुस्मृति की शिक्षाएं लुप्त नहीं कर दी जाती तब तक कभी अमन
चैन नहीं हो सकता। (3) आन्दोलनकारी नमक हरामों और ईमान फरोशों के
साथ मिल गए हैं। (4) अब्दुल कयूम को उस पण्डित का कत्ल नहीं करना
चाहिए था, परन्तु मुस्लिम कानून के अनुसार पैगम्बर की तौहीन करने वाले
आदमी को सजाए-मौत का विधान है, इसलिए उस पंडित का कत्ल करके
अब्दुल कयूम ने पैगम्बर के प्रति अपने प्रेम का ही परिचय दिया है।

स्कूलों पर प्रतिबन्ध

उस समय रियासत में हिन्दुओं के लगभग 400 प्राइवेट स्कूल चल रहे थे।
निजाम ने एक श्वेत पत्र प्रकाशित करके सरकार की शिक्षा नीति धोषित की, और
उसे कानून का रूप देकर, यह कानून बनने से पहले से चलने वाली शिक्षा संस्थाओं पर—
भी, उसे लागू किया गया जिसके परिणामस्वरूप तीन सौ प्राइवेट स्कूल बन्द हो गए।
नियम यह बनाया गया कि जो भी शिक्षा संस्था किसी सम्प्रदाय की ओर से खुलेगी
उसमें धार्मिक शिक्षा अवश्य दी जाएगी और प्रत्येक स्कूल के लिए सरकारी अफसरों
से अनुमति लेनी होगी परन्तु अफसर किसी हिन्दू स्कूल की अनुमति देते ही नहीं थे।

किसी भी राज्य की प्रजा के स्वास्थ्य के लिए व्यायामशालाओं की व्यवस्था
आवश्यक होती है। परन्तु अनेक आर्य समाजों के मंत्रियों को नोटिस दिया गया कि
आपके यहां जो व्यायामशाला चल रही है उसके लिए सरकार की ओर से पहले दी-
गई स्वीकृति रद्द की जाती है।

इसी प्रकार धार्मिक कृत्यों और त्यौहारों पर भी नियंत्रण लगाया गया। कहा गया कि प्रत्येक धार्मिक कृत्य, उत्सव या शोभा यात्रा के लिए तहसीलदार से 15 दिन पूर्व आज्ञा लेनी होगी। यदि 15 दिन तक आज्ञा न मिले, तो वह धार्मिक कृत्य रोक दिया जाय। इसका असर जहाँ आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सवों पर निकलने वाले नगर-कीर्तनों पर पड़ा, वहाँ बीसियों सालों से चले आ रहे गणेशोत्सवों पर भी पड़ा। समस्त महाराष्ट्र में गणेशोत्सवों का कितना महत्व है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

एक बार दशहरा और मुहर्रम एक साथ पड़ गए। तब मुहर्रम के जलूस पर तो किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगा—वह बाजे गाजे के साथ निकाला गया, पर दशहरे के जलूस के लिए कहा गया कि वह बिना बाजे गाजे और बिना झण्डे के निकाला जाए। अनेक हिन्दुओं पर केवल इसलिए की कार्रवाई गई कि मुहर्रम के दिनों में उन्होंने किसी विवाह या शवयात्रा में भाग लिया था।

हवन पर प्रतिबन्ध

आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में उपदेश देने वाले उपदेशक के नाम की, और वे उपदेश में क्या कहेंगे इसकी, पहले से लिखित रिपोर्टें देकर अनुमति लेना आवश्यक कर दिया गया। हवन और अग्निहोत्र को सरकार ने धार्मिक कृत्य मानने से और हवनकुण्ड तथा यज्ञशाला को धार्मिक स्थान मानने से इन्कार कर दिया। कई स्थानों पर ओम के झण्डे उतार दिए गए, हवन कुण्ड तोड़ दिये गए और यज्ञशालाओं का विध्वंस कर दिया गया और आर्यसमाजों की सम्पत्ति जब्त कर ली गई। आरोप यह लगाया गया कि आर्यसमाज की गतिविधियाँ सरकार-विरोधी तथा राजनीतिक हैं। रामायण काल में जैसे राक्षस लोग ऋषियों के यज्ञों में विघ्न डालते थे, वही बात हो गई।

रियासत के वकीलों पर खास तौर से निगरानी रखी जाने लगी क्योंकि वे शिक्षित थे, कानूनों की बारीकियाँ जानते थे, जनता उनका आदर करती थी, कचहरी के नाते जनता के सभी वर्गों से उनका वास्ता पड़ता था और वे अपने विचारों से जनता को प्रभावित कर सकते थे।

वकीलों से रियासत की सरकार किस प्रकार घबराती थी, उसका नमूना यह है: श्री भूलाभाई देताई जैसे भारत प्रसिद्ध विधिवेत्ता, जो कांग्रेस दल के सेप्टल लेजिस्लेटिव असेम्बली में प्रमुख नेता थे और कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य थे, धूलपेठ के हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में हैदराबाद आना चाहते थे और रियासत की बार एसोसियेशन में भाषण देना चाहते थे, पर पुलिस विभाग ने बार एसोसियेशन की मीटिंग पर ही प्रतिबन्ध लगा दिया। इसी प्रकार श्री के०एफ० नरीमान और डा० पट्टाभि-सीतारामैया जैसे वरिष्ठ और योग्य व्यक्तियों को अवांछनीय व्यक्ति तथा गैर-मुल्की बता कर हैदराबाद आने से रोक दिया गया।

जन-सुरक्षा ऐक्ट

सरकार ने एक जन-सुरक्षा (पब्लिक सेफ्टी) ऐक्ट बनाया जिस के अनुसार उसे किसी भी सभा-सोसायटी को गैर कानूनी करार देने का अधिकार मिल गया और ऐसी किसी भी गैर कानूनी संस्था का सदस्य होने पर 6 मास की कड़ी कैद की व्यवस्था की गई। इस प्रकार के संगठन को सहायता देने वाले को तीन वर्ष की सजा और उसका मकान, धन तथा अन्य सम्पत्ति जब्त करने का प्रावधान किया गया।

एक विचित्र आदेश यह भी दिया गया कि सरकारी नौकरी छोड़ने के लिए उकसाने, सेना में भर्ती होने से रोकने, शवयात्राओं में शामिल होने, जब्त साहित्य प्रकाशित करने, पुलिस तथा सेना में अफवाहें फैलाने और रियासत के विभिन्न वर्गों में भेदभाव फैलाने पर जहाँ 16 साल से कम उम्र के नाबालिग लड़कों को दण्डित किया जा सकेगा वहाँ उतना ही कड़ा दण्ड उनके माता-पिता को भी दिया जाएगा।

जन-सुरक्षा अधिनियम के तहत आर्य रक्षासमिति के मंत्री तथा उत्साही कार्यकर्ता श्री शिवचन्द्र और आर्य युवक संघ दिल्ली के प्रधान पं० व्यासदेव जी शास्त्री के हैदराबाद प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। आर्य प्रतिनिधि सभा निजाम राज्य के मंत्री श्री पं० श्यामलाल ने आर्य महा सम्मेलन करने की अनुमति मांगी, नहीं दी गई। हाईकोर्ट के जज श्री केशवराब कोरटकर और श्री वामन माणिक राव ने वकीलों का सम्मेलन करने की अनुमति मांगी, नहीं मिली। सन् 1936 में हैदराबाद में एक शिक्षा-सम्मेलन रखा गया जिसके सभापति श्री रामचन्द्र नायक होने वाले थे—जो छह मास बाद हाईकोर्ट के जज बने, पर अनुमति नहीं मिली। प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता डा० अंसारी और अनातुर्क कमालपाशा के मरने पर शोकसभा की अनुमति मांगी गई, वह भी नहीं मिली। सन् 1934 में एक पुस्तकालय की स्थापना, मैजिक लालटेन के द्वारा लैंक्चर देने और मद्यनिषेध के सम्बन्ध में एक मीटिंग करने की अनुमति भी नहीं दी गई। और तो और, स्वयं महात्मा गांधी रियासत में एक हरिजन बस्ती को देखना चाहते थे और एक खादी भंडार का उद्घाटन करना चाहते थे, पर उन्हें भी अनुमति नहीं दी गई।

धर्मान्तरण

रियासत में धर्मान्तरण को प्रोत्साहन दिया जाता था। खास तौर से स्कूलों और जेलों को धर्मान्तरण का केन्द्र बनाया गया। करीमनगर के शिक्षा-विभाग के सुपरिटेण्डेंट मुहताक अहमद ने सैकिल के स्कूल इन्स्पेक्टर को लिखा—

“अछूत पाठशाला के आधे से अधिक विद्यार्थी मुसलमान बन गए हैं इसलिए आवश्यक है कि उन्हें मजहबी तालीम दी जाए। इसके लिए पूर्व-नियुक्त हिन्दू अध्यापक को हटाकर किसी मुस्लिम अध्यापक को भेजने की व्यवस्था की जानी चाहिए। मुसलमान बन जाने वाले किसी भी विद्यार्थी से फीस न ली जाए।”

सन् 1938 में गुलबर्गा जेल में निजाम के जन्म-दिवस पर एक हिन्दू कैदी को मुसलमान बनाया गया। उस समय श्री लालसिंह नामक एक आर्यसमाजी कैदी भी गुलबर्गा जेल में ही था। उसने इसका विरोध किया। तब गुलजार नामक एक मुसलमान कैदी ने लालसिंह पर घातक हमला किया। वह रंगे हाथ हकड़ा गया। जिस चाकू से हमला किया था, वह चाकू भी बरामद हो गया। परन्तु उसे कोई सजा नहीं दी गई।

एक सरकारी अफसर ने बकैया नामक एक हिन्दू को सूचित किया—“तुम्हारी स्त्री ने इस्लाम कबूल कर लिया है। उसका नाम मैदी से बदल कर रहमानी रख दिया गया है। तुम को भी इस्लाम कबूल करने ही दावत दी जाती है। एक हफ्ते के अन्दर मेरे दफ्तर में आकर खुशी से इस्लाम कबूल कर लोभे तो तुम अपनी बीबी के खाविन्द बने रह सकते हो, वरना वह किसी मुसलमान से ब्याह दी जाएगी और तुम्हारा कोई उज्र नहीं सुना जाएगा।”

अन्त में बहादुरधारजंग ने तबलीगे इस्लाम के हैड आफिस से एक गुप्त सर्कुलर जारी किया जिसमें कहा गया था—“निजाम राज्य में तबलीग (धर्मान्तरण) के काम का पत्रों में प्रकाशित होना ठीक नहीं। इससे तबलीग के काम में बाधा पड़ती है। खास तौर से अछूतों के इलाकों में जो तबलीग का काम चल रहा है उसकी कोई खबर बिल्कुल न छापी जाए। अच्छा हो कि इस पत्र को पढ़ कर फाड़ दें।” (पत्रसंख्या 101, ता० 26 मेहर, 1345 फसली)

सन् 1928 से लेकर सन् 1938 तक के दस वर्षों में हिन्दुओं पर किस प्रकार अत्याचार होते रहे और आतंक के इस राज्य का किस प्रकार सबसे अधिक शिकार आर्यसमाजियों के बनाया गया, इसके कुछ उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। सन् 1938 में ये अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुँच गए। उन अत्याचारों को कुछ बानगी देखिए—

अत्याचारों की पराकाष्ठा

हसनखां ने सत्यनप्पा पर हमला करके उसे मार दिया। पर पुलिस ने पीड़ितों को सात्वना देने और हसन खां को गिरफ्तार करने के बजाय 28 हिन्दुओं का चालान कर दिया जिन पर डेढ़ वर्ष तक मुकदमा चलता रहा।

पुलिस ने बिना किसी कारण के कल्याणी आर्य समाज के मंत्री को बुरी तरह पीटा और फिर उन्हीं पर केस कर दिया। अन्त में कई मास तक अदालतों में घसीटने के बाद केस वापिस लिया।

अकोलगाम में सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने पर महादेव की हत्या कर दी गई, परन्तु हत्यारों को कोई दण्ड नहीं मिला।

गुंजोटी में मुसलमान बनने से इन्कार करने पर वेद प्रकाश का कत्ल हुआ। अपराधी साफ छोड़ दिया गया। उल्टे आयों और हिन्दुओं को फंसाकर महीनों हवालात में रखा गया।

ध्रुवपेठ में हथियारबन्द मुसलमानों ने हिन्दुओं पर हमला किया जिसमें अनेक हिन्दू घायल हुए और हिन्दू स्त्रियों की बेइज्जती करके उनके स्तन काटे गए।

चिटगोपा में पुलिस के अत्याचारों से परेशान होकर नामदेव भाग गया, पर अमीन ने उसकी पत्नी को इतना परेशान किया कि उसने कूएँ में डूबकर आत्महत्या कर ली।

गुंजोटी में पुलिस ने साम्प्रदायिक दंगा होने पर ढाई सौ हिन्दुओं को गिरफ्तार किया। चार आर्यसमाजी प्रतिरोध करने पर मारे गए। उसके बाद खाकसारों ने सारे गांव को बुरी तरह लूटा।

धर्म प्रकाश नागप्पा आर्य समाज का कार्यकर्ता था। रात को सशस्त्र मुसलमानों ने उस पर हमला किया। उससे कहा—'मुसलमान बन जाओ, तो छोड़ देंगे।' जब वह नहीं माना तो उसकी हत्या कर दी।

जिला उदगीर के हुबला ग्राम में भीमराव पटेल के घर में घुस कर मुसलमानों ने माणिकराव का कत्ल किया। भीमराव और उसकी चाची को गोलियों से भुना। तीनों लाशों को मकान में बन्द करके मकान की ही आग लगा दी।

तालेग्राम (जिला बीदर) में रामराव बापूराव पर सैयद अमीर ने अन्य मुसलमानों के साथ हमला करके उसके हाथ पांव काट दिये, परन्तु किसी अपराधी को कोई दण्ड नहीं मिला।

उस्मानाबाद के गोश्कवाडी गांव में भारति के पुत्र लिम्बा जी को सोते हुए ही मुसलमानों ने घेर कर लाठियों से अधमरा कर दिया, परन्तु उसने इस्लाम कबूल करने से इन्कार कर दिया।

निजामाबाद में मुसलमानों ने एक गाय की हत्या की जिसके विरोध में हिन्दुओं ने हड़ताल की। पुलिस बिना वारंट के चार आर्य समाजियों को गिरफ्तार करके ले गई। उन्हें हवालात में बुरी तरह पीटा, उनके यज्ञोपवीत तोड़ डाले।

अप्रैल 1938 में मुसलमानों की भारी भीड़ ने बैरिस्टर बिनाथक राव के घर पर हमला किया, परन्तु अकस्मात अंग्रेज पुलिस इन्स्पेक्टर-जनरल मि. हालिन्स के आ जाने से अव्यवस्थित घटना घटित होने से रह गई। पुलिस ने दंगइयों को पकड़ने के बजाय 21 आर्यसमाजियों को पकड़ लिया और उन पर उपद्रव करने का अभियोग चलाया। आर्य प्रतिनिधि सभा ने इसी केस की पैरवी के लिए श्री नरीमान और श्री भूला भाई देसाई को बुलाया था, पर निजाम ने उन्हें रियासत में नहीं आने दिया।

108/हैदराबाद में सत्याग्रह क्यों ?

चुनौती का जवाब

महाकवि माध ने लिखा है—

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धनिमधिरोहति ।

स्वस्थादेवापमानेऽपि दोहनस्तद्वर रजः ॥

—“बार बार पांवों से आहत होने पर धूल भी सिर पर चढ़ जाती है, तब यदि कोई धीर और स्वाभिमानी व्यक्ति अपमान सह कर भी व्यग्र नहीं हो उठता, तो उससे धूल ही भली ।” ज्यों ज्यों आर्यसमाज पर अत्याचार बढ़ते गए और हिन्दुओं का दमन होता गया, त्यों त्यों हिन्दुओं और आर्य समाजियों में प्रतिरोध शक्ति बढ़ती गई और वे चारों ओर से मिलने वाली इस चुनौती को चुनौती देने लगे ।

जब बीदर का समाज मंदिर पुलिस ने यह कह कर तोड़ दिया कि उसको बनाने के लिए पहले अनुमति नहीं ली गई, हवनकुंड भी तोड़ दिया और आर्यसमाज का सारा सामान जब्त कर लिया, तब पं० बंशीलाल ने वहां धरना दिया, हवन भी किया और उपदेश भी दिया । उन्हें तीन बार नोटिस दिया गया पर तीनों बार उन्होंने उस नोटिस की अवहेलना की, और अपने संकल्प पर अडिग रहे । उन पर मुकदमा चला । सभा के प्रचारक श्री गणपतराय गिरपतार हुए । श्री पं० बंशीलाल के इस मुकदमे की सारे देश में चर्चा हुई । अन्त में ब्रिटिश सरकार के होम आफिस तक यह मामला पहुंचा और निजाम सरकार को झुकना पड़ा । बीदर का समाज मंदिर सरकार को पुनः बनवा कर देना पड़ा ।

15 अक्तूबर 1938 को रियासत के युवक-हृदय सम्राट्, मुसलमानों के प्रत्येक प्रहार का अपनी वाणी से सटीक उत्तर देने वाले, निर्भीक और ओजस्वी वक्ता, श्री पं० नरेन्द्र जी को घोखे से पकड़ कर रियासत के काला पानी मनानोर में बिना कोई मुकदमा चलाए अनिश्चित काल के लिए नजरबन्द कर दिया गया । अब रियासत के आर्यवीरों को किसी भी सान्त्वना-परक वाक्य से बलिपन्थ का पथिक बनने से नहीं रोका जा सका । तब अक्तूबर के द्वितीय सप्ताह में राज्य में आर्यसत्याग्रह की घोषणा हो गई । आर्यसमाज की देखादेखी हिन्दू महासभा ने अक्तूबर के तीसरे सप्ताह में और उसके दो दिन बाद स्टेट कांग्रेस ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी ।

श्री बंशीलाल और उनके भाई श्री श्यामलाल दोनों वकील थे और रियासत में आर्य समाज आन्दोलन के प्राण थे । दोनों ने अपने चारों ओर सैकड़ों कर्मठ आर्य युवकों का संगठन तैयार किया था और इस युवाशक्ति के सहयोग से स्थान-स्थान पर पाठशालाएं, वाचनालय और व्यायामशालाएं खोलों थीं और आर्य समाजों की स्थापना की थी । पुलिस ने इन दोनों भाइयों को कम परेशान नहीं किया । डाके से लेकर कत्ल तक के दीक्षियों अभियोगों में उन्हें फंसाया, उनकी वकालत की सनद जब्त करने की कोशिश की, तरह तरह से आतंकित किया, पर दोनों भाई इतने दृढ़व्रती निकले कि

कोई भी भय उन्हें सत्यपथ से विचलित नहीं कर सका। उदगीर (जिला बीदर) में सन् 1938 में दशहरे के अवसर पर भीषण दंगा हुआ। परम्परानुसार पुलिस ने दंगाइयों को पकड़ने के बजाय आर्यसमाजियों को ही पकड़ लिया। श्री श्यामलाल उस समय आर्य प्रतिनिधि सभा निजाम राज्य के उपप्रधान थे। बीस साथियों के साथ उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 17 दिसम्बर 1938 को उन्हें जेल में ही विष देकर मार दिया गया।

पं० श्यामलाल की हत्या के बाद तो जैसे निजाम के पापों का घड़ा भर गया, वैसे ही समस्त देश के आर्यों के सङ्ग का प्याला भी भर गया। अब रियासत के बाहर के आर्य समाजियों का भी शान्त रहन कठिन हो गया। इससे पहले सन् 1938 में भी आर्यों की सर्वशिरोमणि सार्वदेशिक सभा (इंटरनेशनल आर्यन लीग) निजाम सरकार से निम्न मांगें कर चुकी थी :

1. आर्य प्रचारकों के प्रवेश पर पाबन्दी न लगाई जाए।
2. जलूस निकालने की आज्ञा में भेदभाव न बरता जाए।
3. बिना जांच के धार्मिक साहित्य जब्त न किया जाए।
4. सार्वजनिक सभाओं और शास्त्रार्थों की आज्ञा पर असमान व्यवहार न हो।
5. आर्य समाज मन्दिरों को मस्जिदों के समान ही पवित्र माना जाए।
6. अभी तक निकली निर्वासन आज्ञाओं को वापिस लिया जाए।

सार्वदेशिक सभा की ऐक्शन कमेटी ने उक्त मांगों की पूर्ति के लिए एक मास का अवसर दिया। निजाम सरकार ने उत्तर में केवल इतना कहा —“जो आज्ञा पहले दी जा चुकी है उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।” तब आर्यसमाजियों का एक शिष्ट मंडल निजाम के प्रधानमंत्री महाराजा किशनप्रसाद से मिला। पर कोई परिणाम नहीं निकला।

इसके बाद सार्वदेशिक सभा की ओर से आर्यरक्षा समिति (आर्यन डिफेंस लीग) का निर्माण किया गया और प्रधान महात्मा नारायण स्वामी जी को आर्य महा सम्मेलन बुलाने का अधिकार दिया गया। 28 जून को मध्यप्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष श्री घनश्याम सिंह गुप्त रियासत के अधिकारियों से मिल कर उन्हें अच्छी तरह समझा आए कि अब आर्यसमाजियों को रियासत की पुलिस और न्याय विभाग पर विश्वास नहीं रह गया है। यदि सरकार ने अपनी फिरकापरस्त नीति नहीं बदली तो स्थिति के बिगड़ने की जिम्मेवारी सरकारी अधिकारियों की ही होगी।

वन्देमातरम्

सन् 1938 के उत्तरार्ध में एक और महत्वपूर्ण घटना घट गई। उस्मानिया यूनिवर्सिटी के बोर्डिंग हाउस में हिन्दू विद्यार्थी ‘वन्देमातरम्’ का गीत गाया करते थे। उन विद्यार्थियों को गीत गाने से रोका गया। पर विद्यार्थियों ने आदेश का पालन

नहीं किया। तब 100 छात्रों को छात्रवास से निकाल दिया गया। इस पर कालेज के समस्त हिन्दू छात्रों ने हड़ताल कर दी। सहानुभूति में गुलबर्गा, करीमनगर और महबूब नगर के स्कूल कालेजों के छात्रों ने भी हड़ताल कर दी। इन सब छात्रों के नाम काटने की धमकी दी गई और उस्मानिया यूनिवर्सिटी ने सचमुच ही नाम काट दिए। तब उन विद्यार्थियों ने नागपुर कालेज में जाकर अपने नाम लिखवाए। शुरू में हैदराबाद की पुलिस ने हमारे जत्थे को वन्देमातरम् के कारण उस्मानिया से निकाले जाने पर नागपुर में दाखिल हुए छात्र ही समझा था।

शोलापुर में सम्मेलन

अन्ततः 25, 26, 27 दिसम्बर, 1938 को शोलापुर में आर्य महासम्मेलन हुआ जिसकी अध्यक्षता लोकनायक बापू माधव श्री हरि अणे ने की। इस महासम्मेलन में भारत भर से आर्यसमाजों के प्रतिनिधि शामिल हुए, 20 प्रस्ताव पास हुए और 22 हजार व्यक्तियों ने सत्याग्रह के लिए अपने नाम दिए। 25 हजार से अधिक लोग सम्मेलन में शामिल हुए। सम्मेलन में विभिन्न प्रस्तावों के माध्यम से पहले की गई मांगें दुहराई गई और उनके न माने जाने पर अहिंसात्मक सत्याग्रह का निश्चय किया गया।

हरिपुरा कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार अन्य रियासतों की तरह निजाम रियासत में भी स्टेट कांग्रेस की स्थापना का निश्चय किया गया था। कांग्रेस किसी भी पैमाने से न साम्प्रदायिक संस्था थी, न धार्मिक, वह तो उत्तरदायी शासन के लिए और नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये संघर्षरत थी। जुलाई 1938 तक स्टेट कांग्रेस के 1,200 सदस्य बन गए। पर अधिकांश मुसलमान उसके विरोधी ही रहे। आखिर 7 सितम्बर 1938 को उसे गैर कानूनी संस्था करार दे दिया गया। पहले कह चुके हैं कि अक्टूबर के दूसरे सप्ताह में आर्य समाज ने, तीसरे सप्ताह में हिन्दू महासभा ने और 24 अक्टूबर, 38 को स्टेट कांग्रेस ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी थी। इस प्रकार ये तीनों सत्याग्रह साथ साथ चल रहे थे। पर स्टेट कांग्रेस को सत्याग्रह शुरू किए मुश्किल से दो मास ही हुए थे कि महात्मा गांधी के कहने से स्टेट कांग्रेस के संचालकों ने 23 दिसम्बर, 38 से स्टेट कांग्रेस का सत्याग्रह बन्द कर दिया।

उधर स्टेट कांग्रेस का सत्याग्रह बन्द हुआ और इधर शोलापुर में आर्य महासम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के निश्चयानुसार सारे देश में 22 जनवरी को 'हैदराबाद दिवस' मनाया गया। अधिकांश नगरों में दिवस शान्तिपूर्वक गुजर गया, पर कई स्थानों पर मुसलमानों ने इसे अपने विरुद्ध समझ कर अनेक प्रकार के विध्वन डाले। दिल्ली में भारी दंगा हुआ जिसमें 18 व्यक्ति घायल हो गए। हैदराबाद खास में यह दिवस मनाने पर 28 हिन्दू गिरफ्तार किए गए। अजमेर में 25 हजार लोगों

ने जलूस निकलन । बरेली में दंगा हुआ जिसमें 50 व्यक्ति गिरफ्तार किए गए । निजाम रियासत के सभी नगरों में ऐसी भुक्कमल हड़ताल हुई कि सब सरकारी अधिकारी देखते ही रह गये ।

सत्याग्रह शुरू

महासम्मेलन समाप्त होते ही उसके अध्यक्ष लोकनायक श्री अणे और प्रथम सर्वाधिकारी महात्मा नारायण स्वामी जी ने रियासत के दीवान अकबर हैदरी को अलग अलग पत्र लिखे और अपनी मांगों को दुहराते हुए 14 दिन का अल्टिमेटम दिया । सार्वदेशिक सभा की ओर से एक पत्र वायसराय को भी भेजा गया । किसी का कोई उत्तर नहीं आया ।

इस प्रकार सब वैध उपायों के समाप्त हो जाने पर 22 जनवरी, 1939 को अखिल भारतीय सत्याग्रह की घोषणा कर दी गई । तब तक गत तीन मास में रियासत के 925 सत्याग्रही जेलों में जा चुके थे । नारायण स्वामी जी ने राज्य के इन सब सत्याग्रहियों को अ० भा० आर्य रक्षा समिति के सत्याग्रहियों की कोटि में ही गिने जाने की घोषणा कर दी । 23 जनवरी, 1938 से शोलापुर में सत्याग्रही पहुंचने शुरू हो गए ।

प्रश्न था कि सत्याग्रह शुरू कैसे किया जाए । हैदराबाद नगर रियासत के बीच में था, इसलिए किसी भी सवारी से वहां पहुंचना संभव नहीं था । सीमा पर पुलिस उतार लेती और अन्दर नहीं जाने देती । यों भी निजाम की सी आई डी बहुत चौकन्नी थी । स्वामी जी ने सोचा कि हैदराबाद पहुंचने का सर्वोत्तम उपाय यह हो सकता है कि बंबई से सीधे विमान में बैठकर हैदराबाद के हवाई अड्डे पर उतरा जाय । 31 जनवरी की तारीख तय की गई । परन्तु बंबई से 30 जनवरी को तार आया कि 9 फरवरी तक विमान में कोई सीट उपलब्ध नहीं है । तब नारायण स्वामी जी ने बंबई जाना व्यर्थ समझ कर रेल से ही हैदराबाद जाने का निश्चय किया । उधर निजाम की पुलिस को खबर लग गई थी कि स्वामी जी हवाई अड्डा से आ रहे हैं, इसलिए वह हवाई अड्डे पर उनकी प्रतीक्षा करती रही । इधर स्वामी जी 30 जनवरी की रात को 11 बजे शोलापुर से रेल में बैठे और चुपचाप सवेरे हैदराबाद पहुंच गए । स्टेशन से तांगा करके वे मुलतान बाजार के आर्य समाज मन्दिर में पहुंचे । पर वहां ताला बन्द था । स्वामी जी बाहर टहलने लगे । थोड़ी देर बाद एक हिन्दू सी आई डी का ध्यान इस अजनबी व्यक्ति की ओर गया । उसने आकर उनका नाम पूछा । स्वामी जी ने अपना नाम बताया । उसने स्वामी जी से पुलिस स्टेशन तक चलने की प्रार्थना की । स्वामी जी ने कहा कि तुम जाकर पुलिस अधिकारियों को खबर कर दो । मैं स्वयं पुलिस स्टेशन नहीं जाऊंगा ।

थोड़ी ही देर में पुलिस की मोटर आई और स्वामी जी को पुलिस स्टेशन ले गई। वहाँ सुपरिटेण्डेंट तथा अन्य अफसरों ने उनसे अत्यन्त शिष्टाचार पूर्वक बातचीत की। वहीं एक अंग्रेजी अफसर भी मौजूद था। उसने कहा कि मैं पिछले चार साल से रियासत में हूँ, मुझे एक भी अवसर स्मरण नहीं आता जब हिन्दुओं की ओर से कोई शिकायत हुई हो और उसका प्रतिकार न किया गया हो।

स्वामी जी ने जब अपनी ओर से पिछले दिनों राज्य में घटी घटनाओं का विवरण दिया, तो सब अफसर भी स्तब्ध रह गए। उन्होंने स्वामी जी को एक लिखित आदेश पत्र दिया कि आप रियासत छोड़ कर चले जाएँ क्योंकि आप के यहाँ रह। से शान्ति भंग होने का खतरा है। स्वामी जी ने उस पर हस्ताक्षर तो कर दिये पर उस पर अमल करने से इन्कार कर दिया।

तब एक पुलिस अफसर ने स्वामी जी को मोटर में बिठाकर रात को हैदराबाद से 52 मील दूर एक सुनसान डाक बंगले में ले जाकर छोड़ दिया। वहाँ पीने के पानी तक की व्यवस्था नहीं थी। अगले दिन सुबेरे, जहाँ से रियासत की सीमा समाप्त होकर ब्रिटिश राज्य की सीमा शुरू होती थी, वहाँ उन्हें छोड़ कर पुलिस अफसर चला गया। स्वामी जी वहाँ से बस में बैठकर 1 फरवरी, 1930 को दोपहर दो बजे वापिस शोलापुर पहुँच गए।

उसके बाद महात्मा नारायण स्वामी जी ने 4 फरवरी को बीस सत्याग्रहियों के साथ गुलबर्गा में सत्याग्रह किया और रवाना होने से पहले गुलबर्गा के सूबेदार को तार द्वारा इसकी सूचना दे दी। गुलबर्गा पहुँचते ही जस्थे को गिरफ्तार कर लिया गया। 5 फरवरी को उन्हें मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश किया गया और 6 फरवरी को एक एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गई। अन्य अभियोगों के साथ उन पर एक अभियोग यह भी था कि जब रियासत में प्रवेश पर प्रतिबन्ध है, तब उन्होंने रियासत में प्रवेश क्यों किया। सब सत्याग्रहियों के पांवों में अन्य कैदियों की तरह जेल के नियमानुसार लोहे के कड़े खाल दिए गए। तब तक रियासत में राजनीतिक कैदियों को चोर डाकू आदि अन्य कैदियों से अलग मानने की परंपरा नहीं थी, ब्रिटिश भारत की तरह ए बी सी श्रेणियाँ भी नहीं थीं। सत्याग्रह क्या होता है, इसका भी अधिकारियों को आभास नहीं था। इस लिए सत्याग्रहियों के साथ वे अन्य कैदियों की तरह ही व्यवहार करते थे।

देशव्यापी आन्दोलन

जब देश भर में यह समाचार फैला कि 75 वर्ष के बूढ़े संन्यासी के साथ निजाम की जेल में कैसा व्यवहार किया जा रहा है, तब आम जनता में उत्तेजना फैलना स्वाभाविक था। अभी तक निजाम ने यह व्यवस्था कर

रखी थी कि रियासत के समाचार बाहर न जाने पावें और बाहर के समाचार अन्दर न आने पावें । पर सार्वदेशिक समा द्वारा सत्याग्रह शुरू किए जाने पर यह दीवार टूट गई । रियासत के हिन्दुओं पर अत्याचारों की खबरें बाहर पहुंचने लगीं । इससे पहले देश की आम जनता इस बात से भी अनभिज्ञ थी कि गत तीन मास से रियासत में आर्य समाज, हिन्दू महासभा और स्टेट कांग्रेस तीनों की ओर से सत्याग्रह चल रहा था और उसमें काफी व्यक्ति गिरफ्तार हो चुके थे । इतना व्यापक जन-समर्थन इससे पहले किसी भी राज्य में किसी भी सत्याग्रह आन्दोलन को मिला हो, स्मरण नहीं आता । पर देश अंधेरे में था । अब जब प्रकाश की किरणें छिटककर बाहर पहुंचने लगीं तो अनन्त उत्तेजित होती ही ।

धीरे धीरे आर्यसत्याग्रह जोर पकड़ता गया । एक तरह से वही बात चरितार्थ हो गई—

हम अकेले ही चले थे जानिबे-मंजिल मगर
हम सफर आते गए और कारवां बनता गया ॥

यह कारवां इतना उग्र रूप धारण कर लेगा इसकी किसी को कल्पना नहीं थी । उस सत्याग्रह में कैदियों को किस प्रकार की कठिनाइयों से गुजरना पड़ा, उसकी एक झलक पिछले पृष्ठों में मिलेगी जिसमें लेखक ने अपने जट्टे की आपबीती लिखी है । इस सत्याग्रह में केवल आर्यसमाजियों ने नहीं बल्कि, देश के सभी वर्गों के लोगों ने हिस्सा लिया । कई सिख और मुसलमान बंधु भी सत्याग्रह में शामिल हुए । पहले कांग्रेसी नेताओं को यह विश्वास नहीं था कि आन्दोलन अहिंसात्मक और शांतिपूर्ण रह सकेगा । देश में साम्प्रदायिकता के उभरने की आशंका से ही उन्होंने स्टेट कांग्रेस को सत्याग्रह बन्द करने का परामर्श दिया था । परन्तु आर्यसमाज के चिन्तन में कभी साम्प्रदायिकता का स्थान नहीं रहा । उसने सदा मानव भात्र को एक ही परमपिता की सन्तान के नाते भाई भाई माना है । पर अन्याय, असत्य और अत्याचार का आश्रय लेने वाले भाई का विरोध कर । को भी उसने धर्म का अंग ही माना है ।

कांग्रेसी नेताओं की सम्मतियां

कुछ कांग्रेसी ताओं की सम्मतियां देखिए ।

सत्याग्रह की समाप्ति पर महात्मा गांधी ने लिखा—

“आर्यसत्याग्रह का अन्त मीठा हुआ । मैंने अब तक इस धर्मयुद्ध के विषय में मौन धारण कर रखा था । उसका कारण यह था कि इस सम्बन्ध में मैं मौलाना अब्दुल कलाम आजाद के भशविरे पर चल रहा था । पर आर्य नेताओं और मुसलमान मित्रों से मेरा विचार विनिमय होता रहता था । आर्यसमाज की मांगों के प्रति मेरी सहानुमति थी । ये मांगें जन्मसिद्ध अधिकारों के रूप में थीं । अब निजाम सरकार अपनी विज्ञप्ति में घोषित भावनाओं के अनुसार काम करेगी तो धार्मिक व सांस्कृतिक स्वतंत्रता के सम्बन्ध में पुनः झगड़ा आरम्भ होने का कोई कारण नहीं रहेगा ।”

पं. जवाहार लाल नेहरू ने लिखा था—

“कई राजनीतिक कारणों को लेकर बहुत से लोगों ने हैदराबाद सत्याग्रह का विरोध किया था। पर हमने यह ठीक ही कहा था कि धार्मिक स्वतंत्रता का उद्देश्य सही उद्देश्य है। आर्यसमाजियों की शिकायतें सच्ची हैं और उन्हें दूर कराने की इच्छा साम्प्रदायिक नहीं है। कांग्रेस ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कभी निजाम सरकार की निरंकुशता का समर्थन नहीं किया। ऐसे दुःखद काण्ड के संतोषपूर्ण हल पर आर्य समाज और निजाम दोनों धन्यवाद के पात्र हैं।”

डा. राजेन्द्रप्रसाद ने लिखा —

“हैदराबाद के आर्यसमाजियों और हिन्दुओं की शिकायतें ठीक हैं और उनको दूर करने का आन्दोलन भी ठीक है। कोई कांग्रेसी आर्यसमाजी आन्दोलन में सम्मिलित होता है तो इसमें मुझे आक्षेप योग्य कोई बात नहीं दिखाई देती।...आर्य समाज को अपने त्याग, कार्यदक्षता और संयम के लिए और हैदराबाद राज्य को उनकी न्यायोचित मांगें मानने के लिए बधाई।”

आचार्य कृपलानी ने लिखा:

हरेक कांग्रेसी यह मानता है कि हैदराबाद रियासत में आर्यसमाज पर लगाए गए प्रतिबन्ध आवांछनीय हैं और उनका प्रतिकार होना चाहिए। आर्यसमाजियों की मांगें निजाम सरकार के विरुद्ध हैं, मुसलमानों के विरुद्ध नहीं। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि प्रत्येक आर्यसमाजी कांग्रेसमैन को व्यक्तिगत रूप से धार्मिक स्वतंत्रता की रक्षा के संघर्ष में शामिल होने का पूरा अधिकार है।”

आर्यसमाज की मांगें

आर्यसमाज ने जिन मांगों के लिए सत्याग्रह किया था, वे निम्नांकित हैं—

1. आर्यसमाज मंदिरों, हवनकुण्डों और यज्ञशालाओं के निर्माण के लिए राज्य की अनुमति लेने की आवश्यकता न हो।
2. राज्य से बाहर के आर्यसमाजी प्रचारकों को राज्य में प्रवेश और धर्म-प्रचार से न रोका जाए।
3. आर्यसमाज में धार्मिक और सांस्कृतिक भाषणों तथा गतिविधियों पर प्रतिबंध न हो।
4. जिन आर्यसमाजियों पर केस चल रहे हैं वे उठा लिये जाएं और बन्दियों को छोड़ दिया जाए।
5. आर्यसमाजी साहित्य जन्त न किया जाए।
6. जिन आर्यसमाजी विद्वानों और प्रचारकों को निर्वासन के आदेश दिए गए हैं वे वापिस लिये जाएं।

7. आर्यसमाजों को अपने वार्षिकोत्सवों और नगरकीर्तनों की छूट हो ।

8. धर्म विभाग (अमूरे मजहबी) को समाप्त कर दिया जाए, या अंग्रेजसमाज को उसके अधीन न रखा जाए ।

9. आर्यसमाजी शिक्षण संस्थाओं और सांस्कृतिक संस्थानों को अपने ढंग से काम करने की स्वतंत्रता हो ।

10 आर्यसमाज की ओर से किये जाने वाले हिन्दी तथा संस्कृत के प्रचार में बाधा उपस्थित न की जाए ।

अन्त में इस देशव्यापी आन्दोलन की जब ब्रिटिश पार्लियामेंट में और यूरोप के अखबारों में गूँज सुनाई देने लगी तब निजाम सरकार ने उसी वर्ष जुलाई मास में कुछ सुधारों की घोषणा की । इन सुधारों का मजलसे इस्तिहादुल मुसलमीन ने और मुस्लिम पत्रों ने विरोध किया । पर सत्याग्रह की शक्ति व प्रभाव के आगे निजाम विवश था । उसे झुकना पड़ा । 24-25 जुलाई को नागपुर में सार्वदेशिक सभा की मीटिंग हुई । कुछ सुधारों के स्पष्टीकरण के लिए निजाम सरकार से कहा गया । उन स्पष्टीकरणों पर आर्य नेताओं ने विचार किया । सत्याग्रह को समाप्त करने का जब अन्तिम निश्चय होने लगा तब एक बाधा खड़ी हो गई ।

निजाम सरकार पं० नरेन्द्र जी को (जो बाद में संन्यास लेकर स्वामी सोमानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए) इतना खतरनाक समझती थी कि उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं हुई । उनकी मुक्ति के बिना आर्य नेता भी सत्याग्रह समाप्त करते को तैयार नहीं हुए । तब श्री घनश्याम सिंह गुप्त सर अकबर हैदरी से मिले । निजाम सरकार को यहाँ भी झुकना पड़ा । अंत में समझौता हुआ कि निजाम सरकार सभी सत्याग्रहियों को मुक्त कर देगी, उनके जुमनि माफ कर देगी, जब्त की हुई सम्पत्ति लौटा दी जाएगी, जिन्हें सरकारी सेवा से अलग कर दिया गया है उन्हें पुनः सरकारी सेवा में ले लिया जाएगा और सब सत्याग्रहियों को उनके घर तक वापिस जाने का रेल का टिकट दिया जाएगा (इस पर निजाम सरकार का लगभग 15 लाख रु० व्यय हुआ) । फिर भी निजाम ने अपनी नाक रखने के लिए सब सत्याग्रहियों को छोड़ने का जो दिन तय किया, वह 17 अगस्त था । यही निजाम का जन्म दिवस भी था । यह इसलिए किया गया ताकि यह कहा जा सके कि निजामुलमुल्क ने अपने जन्मदिवस के उपलक्ष्य में सब कैदियों को माफ कर दिया । मानव अपने मिथ्या अहं को पालने की कैसी कैसी तरकीबें निकालता है ? रस्सी जल गई, पर एंठ नहीं गई ।

आर्यसमाजियों की साधना और संघर्ष का यह ज्वलंत इतिहास भावी पीढ़ियों के लिए सदा प्रेरणादायक रहेगा । सहीदों के रक्त का एक एक बिन्दु आर्यसमाज के मस्तक का चन्दन और भारत माता का सीमाग्न-तिलक बनकर सदा चमकता रहेगा ।

हुतात्मा सत्याग्रही

आर्य सत्याग्रह में बन्धियों के साथ जैसा क्रूर व्यवहार किया गया उसका यह परिणाम हुआ कि सत्याग्रह की समाप्ति तक जेल के अत्याचारों से अनेक सत्याग्रही शहीद हो गए। शहीदों में निम्न व्यक्तियों के नाम उल्लेखनीय हैं—

- | | |
|---------------------------|-------------------------|
| 1. पं० इशामलाल जी | 13. श्री शांतिप्रकाश |
| 2. श्री परमानन्द जी | 14. „ बदर सिंह |
| 3. स्वामी सत्यानन्द जी | 15. „ तारा चन्द |
| 3. श्री विष्णु भगवन्त | 16. „ अशर्फी प्रसाद |
| 5. „ छोटेला | 17. ब० रामनाथ |
| 6. „ माधवराव | 18. श्री सदाशिव फाटक |
| 7. „ नाथूमल | 19. „ गोविन्द राव |
| 8. „ सुनहरी सिंह | 20. „ रामजी |
| 9. „ पांडुरंग | 21. „ रतीराम |
| 10. म० फकीरचन्द | 22. „ रोड़ामल |
| 11. श्री मलखान सिंह | 23. „ पुरुषोत्तम ज्ञानी |
| 12. स्वामी कल्याणानन्द जी | 24. „ व्यंकट राव |

सत्याग्रह शुरू होने से पहले निजाम रियासत में ही जो लोग शहीद हो गए, एक तरह से जिनके कारण सत्याग्रह करना आवश्यक हो गया, उन शहीदों के नाम भी स्मरणीय हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

- | | |
|-------------------------------|-----------------------------|
| 1. श्री वेद प्रकाश, गुजोटी | 7. श्री रामकृष्ण, लावसी |
| 2. „ धर्मप्रकाश, कल्याणी | 8. „ भीमराव, उदगीर |
| 3. „ महादेव, अकोलागा | 9. „ माणिकराव, उदगीर |
| 4. „ माधवराव सदाशिवराव, लातूर | 10. „ सत्यनारायण, बीदर |
| 5. „ राधाकृष्ण, निजामाबाद | 11. „ अर्जुन सिंह, औरंगाबाद |
| 6. „ लक्ष्मणराव, हैदराबाद | 12. „ गोविन्दराव, बीदर |

आर्य समाज ने अपने जन्मकाल से ही शहादत का प्याला पिया है। हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह ने जिस प्रकार हुतात्माओं की यह गौरवमयी मणिमाला प्रस्तुत कर दी वह भारत माता के गले का आभूषण तो बनी ही, स्वातंत्र्य संघर्ष के इतिहास की भी बेमिसाल घटना बन गई। आर्यसमाजियों ने अपने हाथ कभी खून से नहीं रंगे, पर उनकी छातियां सदा खून से रंगी रहीं।

कौन सर्वाधिकारी कब गिरफ्तार हुआ

27 दिसम्बर, 1938 को शोलापुर के आर्य महासम्मेलन में सत्याग्रह करने का निश्चय किया गया।

4 जनवरी, 1939 को महात्मा नारायण स्वामी जी ने निजाम सरकार को अपनी मांगें भेजीं और 15 दिन के अन्दर उन्हें न मानने पर सत्याग्रह करने की चेतावनी दी।

22 जनवरी, 1939 को सार्वदेशिक सभा के आदेश पर सारे देश में 'सत्याग्रह दिवस' और 25 जनवरी, 1939 को 'हैदराबाद दिवस' मनाया गया।

31 जनवरी, 1939 को प्रथम सर्वाधिकारी महात्मा नारायण स्वामी जी सत्याग्रह करने हैदराबाद पहुंचे, परन्तु पुलिस उन्हें पकड़ कर शोलापुर छोड़ गई।

4 फरवरी, 1939 को नारायण स्वामी जी शोलापुर से गुलबर्गा रवाना हुए।

6 फरवरी, 1939 को नारायण स्वामी जी 20 सत्याग्रहियों के साथ गुलबर्गा में गिरफ्तार हुए। सब को एक-एक वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड मिला।

5 मार्च, 1939 को द्वितीय सर्वाधिकारी कुंवर चांदकरण शारदा (राजस्थान) के नेतृत्व में 64 सत्याग्रहियों ने गुलबर्गा में सत्याग्रह किया। सबको 1½-1½ वर्ष का कठोर कारावास मिला।

22 मार्च, 1939 को तृतीय सर्वाधिकारी श्री खुशहालचन्द खुर्द (पंजाब) ने, जो बाद में महात्मा आनन्द स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए, 160 सत्याग्रहियों के साथ गुलबर्गा में सत्याग्रह किया। ठाकुर अमरसिंह जी (वर्तमान महात्मा अमर स्वामी जी महाराज) भी उनके साथ थे।

22 अप्रैल, 1939 को चतुर्थ सर्वाधिकारी श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री (उत्तर प्रदेश, बाद में स्वामी ध्रुवानन्द जी के नाम से प्रसिद्ध) ने 531 सत्याग्रहियों के साथ गुलबर्गा में सत्याग्रह किया। वे पूरी स्पेशल ट्रेन ले गये थे। सब को दो दो वर्ष की सजा मिली।

5 मई, 1939 को पांचवें सर्वाधिकारी श्री वेदव्रत वानप्रस्थी (बिहार) 500 व्यक्तियों के साथ हदगांव में गिरफ्तार हुए। 1½-1½ वर्ष का कारावास हुआ। नांदेड़ जेल में रखे गए।

5 जून, 1939 को छठे सर्वाधिकारी म० कृष्ण जी (पंजाब) 782 सत्याग्रहियों के साथ औरंगाबाद में गिरफ्तार हुए।

22 जून, 1939 को सातवें सर्वाधिकारी पं० ज्ञानेन्द्र जी सिद्धांत भूषण अपने साथियों के साथ गुलबर्गा में गिरफ्तार हुए। सबको 1½-1½ वर्ष की सजा हुई।

आठवें सर्वाधिकारी बैरिस्टर विनायकराव (हैदराबाद) नियुक्त हुए थे। उनके साथ तीन हजार से अधिक सत्याग्रही सत्याग्रह के लिए तैयार थे। पर उनके सत्याग्रह की नीबत नहीं आई।

118/हैदराबाद में सत्याग्रह क्यों ?

जो सर्वाधिकारी तो नहीं थे, किंतु जिनके साथ बड़ी संख्या में सत्याग्रहियों के जत्थे गए, उनमें से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के नाम इस प्रकार हैं —

2 जुलाई, 1939 को पं० बुद्धदेव विद्यालंकार 300 सत्याग्रहियों के साथ गिरफ्तार हुए ।

16 जुलाई को गुरुकुल सिकन्दराबाद के आचार्य श्री त्वेन्द्रनाथ शास्त्री 300 सत्याग्रहियों के साथ गिरफ्तार हुए ।

20 जुलाई को भारतीय शुद्धि सभा के प्रधान स्वामी चिदानन्द जी 200 सत्याग्रहियों के साथ गिरफ्तार हुए ।

इनके अलावा अनेक विशिष्ट व्यक्ति सत्याग्रहियों की भिन्न-भिन्न संख्याओं के साथ अलग-अलग तारीखों में गिरफ्तार हुए, पर उनका लिखित विवरण प्राप्त नहीं हो सका ।

तब तक आर्य सत्याग्रह देशव्यापी रूप धारण कर चुका था । कश्मीर से लेकर केरल तक और बंगाल से बम्बई तक कोई ऐसा प्रान्त नहीं बचा जहां से सत्याग्रहियों के जत्थे न आ रहे हों । इसके अलावा बर्मा और नैरोबी से भी सत्याग्रहियों के जत्थे आए । इस स्थिति से निजाम सरकार घबरा गई । ब्रिटिश सरकार ने भी निजाम पर दबाव डाला । अन्त में, 8 अगस्त, 1939 को निजाम सरकार ने विज्ञप्ति निकालकर आर्य समाज की मांगें स्वीकार कर लीं । इस पर सार्वदेशिक सभा ने सत्याग्रह बन्द करने की घोषणा की ।

17 अगस्त, 1939 को निजाम ने अपने जन्मदिवस के उपलक्ष्य में सब सत्याग्रहियों को छोड़ दिया । उस समय निजाम की जेलों में लगभग 12 हजार सत्याग्रही विद्यमान थे ।

इस सत्याग्रह में 30 से अधिक आर्यवीर जेलों की ज्यादतियों के कारण शहीद हुए । लगभग 20 लाख रु० व्यय हुआ । हजारों लोगों ने त्याग और तपस्या का अद्भुत उदाहरण उपस्थित किया ।

इस प्रकार सार्वदेशिक सत्याग्रह 31 जनवरी, 1939 से 17 अगस्त, 1939 तक — अर्थात् 7½ मास तक चला । निजाम रियासत में शुरू हुए आर्य सत्याग्रह को भी इसमें शामिल किया जाए तो 15 अक्टूबर 1938 से शुरू हुआ यह सत्याग्रह पूरे 10 महीने तक चला ।

उज्ज्वलतर शौर्यदीप

सत्याग्रह की भट्टी में पड़ कर आर्यसमाज सोने से कुन्दन बन गया। हिन्दू जनता के मन से निजाम शाही का आतंक समाप्त हो गया। रियासत के युवा वर्ग में इस सत्याग्रह ने जो क्रान्ति की ज्वाला धधका दी, उससे उनके मन में निजामशाही को सदा के लिए समाप्त करने के सपने फनफने लगे। स्थान स्थान पर आर्य महा सम्मेलन किए जाने लगे। शोलापुर में डी०ए०वी० कालेज खुला। हैदराबाद में केशव राव मेमोरियल हाई स्कूल खुला। हिन्दी महाविद्यालय खुला। एक उपदेशक विद्यालय खोला गया। जैसे अग्रिमण हिन्दू जनता में नया जीवन आ गया। रेगिस्तान में जैसे हराभरा नखलिस्तान खिल उठा। आर्यसमाज की बढ़ती हुई लोक प्रियता और निजाम की बढ़ती हुई अनीति को देखकर कुछ दूरदर्शी बुद्धिमान जनों ने तो यह भविष्यवाणी भी करनी आरम्भ कर दी कि निजाम शाही के दिन अब गिने-चुने ही रह गए हैं और आर्य समाज के हाथों ही इस तानाशाही का अन्त होगा। इसके लिए लोगों ने अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का परिचय देते हुए कहना प्रारम्भ कर दिया कि जैसे एक ही राशि के होते हुए भी राम ने रावण का नाश किया, कृष्ण ने कंस का नाश किया, गांधी ने गवर्मण्ट से लोहा लिया, नारायण स्वामी और पं० नरेन्द्र ने निजाम की नाक में नकेल डाली, वैसे ही आसफजाही खानदान का उन्मूलन उसी राशि वाले आर्य समाज के हाथों होने का, अलिखित पर भावी इतिहास की दीवार पर लिखित, विधि का विधान है। सत्याग्रह के समय जो शौर्यदीप प्रज्वलित हुआ था उसकी आभा दिन प्रति दिन उज्ज्वलतर होती चली गई। इतिहास का देवता अनुकूल समय की प्रतीक्षा करने लगा।

सन् 1939 के सत्याग्रह के बाद निजाम एक दो साल तक तो ठीकठाक रहा, पर सन् 1941 से फिर उसने वही पुराना रवैया अपनाना शुरू कर दिया। फिर वही प्रतिबन्धों की भरमार, हत्याओं का दौर, मुस्लिम सलतनत कायम करने का जोम, स्थान स्थान पर दंगे। पर अब हिन्दू दबने को तैयार नहीं थे।

फिर आपबीती का उदाहरण दें। सन् 1941 में सिकन्दराबाद और हैदराबाद के वार्षिकोत्सवों पर मेरे भाषण हुए। उस समय के आर्य समाज की लोकप्रियता का क्या कहना ! दोनों उत्सवों में पचास-पचास हजार से कम श्रोता नहीं होंगे। मैंने अपने साहित्यिक ढंग से, व्यंजना वृत्ति का आश्रय लेते हुए, देश की विघटनकारी प्रवृत्तियों पर जब करारी चोट की, तो 5 साल के लिए रियासत में मेरे प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। मेरे व्याख्यान का समर्थन कर पर नरेन्द्र जी को गिरफ्तार कर लिया गया। मैं ब्रिटिश भारत की प्रजा था इसलिए रियासत मुझे गिरफ्तार नहीं कर सकती थी।

उसके बाद, सन् 1946 में उस प्रतिबन्ध की समाप्ति पर जब मैं पुनः हैदराबाद में आमंत्रित होकर गया, तो मैंने अनुभव किया कि रियासत के युवक अपने मनों में जो ज्वालामुखी छिपाए बैठे हैं—न जाने कब उसमें से लावा निकलना प्ररम्भ हो जाए।

सन् 1945 में गुलबर्गा के आर्य महा सम्मेलन को विफल करने के लिए षड्यंत्र किया गया। पुलिस के सहयोग से मुसलमानों ने आर्यसमाजियों पर हमला किया। श्री विनायराव विद्यालंकार, पं० नरेन्द्र जी, श्री गणपत काशीनाथ शास्त्री आदि विशिष्ट आर्यजनों को हमलावरों ने घायल कर दिया। सारे शहर में दंगा फैल गया। पर आर्यवीरों ने न हिम्मत हारी, न घेंयें खोया, और सब तरह से सन्नद्ध और जागरूक रहकर सम्मेलन को सफल किया। जहाँ जहाँ आर्य वीरों ने गुण्डों को चुनौती दी वहाँ वहाँ उनके हौसले पस्त हो गए और वे भाग खड़े हुए। गुलबर्गा के इस क्रूर काण्ड ने आने वाली घटनाओं का संकेत दे दिया। सारी रियासत में इस काण्ड के विरोध में उग्र आन्दोलन हुआ। अन्त में सरकार को इस लज्जाजनक काण्ड के लिए पुलिस को दोषी ठहराते हुए, चार कांस्टेबलों और एक सब-इन्स्पेक्टर को नौकरी से बर्खास्त करना पड़ा।

उधर देश का राजनीतिक परिदृश्य बड़ी तेजी से बदलता जा रहा था। सन् 1946 में मोआखाली में मुस्लिम लीग ने कत्लेआम शुरू किया, तो बिहार में उसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। फलस्वरूप भारत विभाजन का प्रबन्ध किया जाने लगा और अंग्रेज भारत से विदा होने की तैयारी करने लगे। इस स्थिति से निजाम की बाँछें खिल गईं। उसने समझा कि चिर-पोषित मनोरथ को पूर्ण करने का अवसर आ गया है।

स्वतंत्र हैदराबाद

15 अगस्त 1947 को भारत की स्वतंत्रता की घोषणा होते ही निजाम ने अपनी रियासत की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। निजाम का बस चलता, तो वह पाकिस्तान में शामिल होता। परन्तु भौगोलिक परिस्थिति और 88 प्रतिशत हिन्दू प्रजा उसके मार्ग में बाधक थी। उसने रजाकारों की नई भर्ती की, मजलिस इत्तिहादुल मुसलमीन को सह दी। उसे भरोसा था कि इनके बल पर वह स्वतन्त्र भारत की कांग्रेसी सरकार को बखूबी चुनौती दे सकेगा। कांग्रेसी नेताओं की मुस्लिम तुष्टि करण नीति से भी वह आश्वस्त था। पाकिस्तान उसकी पीठ पर था ही।

उसने अपने पाँव फैलाकर 'वृहद् हैदराबाद राज्य' की योजना बनाई। मखलीपत्तन और विदर्भ पर उसकी नजर लगी हुई थी। 25 लाख ६० सालाना की एक्जी में निजाम ने बरार अंग्रेजों को सौंप रखा था। उसके बदले में अंग्रेजों ने हैदराबाद के नवाब को 'प्रिंस आफ बरार' का खिताब दे रखा था। बस्तर राज्य के नाबालिग राजा प्रवीरचन्द्र भंजदेव पर उसने डोरे डालने शुरू किए। यूरोप तक समुद्री मार्ग से पहुंचने की गरज से उसने गोवा को खरीदने के लिए पुर्तगाल के तानाशाह सालाबार से सौदेबाजी की। उसने संयुक्तराष्ट्रसंघ की सदस्यता प्राप्त करने का गुप्त अभियान प्रारम्भ किया। पुरानी सहायता के बदले बर्तानिया और अमरीका से उसे पूरी सहायता की आशा थी। मजलिस वाले अपने आपको हैदराबाद का मालिक समझते थे। निजाम ने नए मन्त्रिमण्डल में मजलिस के चार मंत्री ले

लिये तो मजलिस वाले नाजीशाही पर उत्तर आए । मजलिस का नेता कासिम रिजवी रजाकारों का फील्डमार्शल बन कर भारत संघ से टक्कर लेने की तैयारी करने लगा । सिडनी काटन नामक अंग्रेज पाकिस्तान और गोवा के रास्ते हवाई जहाज से हथियारों की खेप भर भर कर लाने लगा । तीन लाख नये रजाकार निजाम की सहायता के लिए भर्ती किये गए । रियासत के सभी महत्वपूर्ण केन्द्रों पर सेना और पुलिस का जाल बिछ गया और उन्हें आदेश दे दिया गया कि जो भी कोई सरकार और उसकी नीति का विरोध करे, उसे गोली मार दी जाए । अन्दर ही अन्दर आर्यसमाजियों के सफाये की योजना पर अमल होने लगा ।

आर्यसमाज के लिए फिर परीक्षा की घड़ी उपस्थित हो गई । वह फिर मैदान में कूद पड़ा । उसने तथाकथित आजाद हैदराबाद सरकार के विरुद्ध संघर्ष का बिगुल बजा दिया और घोषणा की कि हैदराबाद भारत का अविभाज्य अंग है और भारत-संघ में शामिल होने में ही रियासत की जनता का हित है । परिणाम-स्वरूप पं० नरेन्द्र जी, पं० दत्तात्रेय प्रसाद वकील और पं० गंगाराम आदि प्रमुख आर्य नेता फिर गिरफ्तार कर लिये गए । 1947 में ही रायकोडा जिला बीदर में 14 हिंदुओं की हत्या हुई और 154 दुकानें जलाई गईं । रजाकार संगठित और योजनाबद्ध ढंग से रक्तपात और लूटमार करने लगे और पुलिस तथा फौज उनका साथ देने लगी । उन दिनों पग-पग पर मौत नाचती थी । कई स्थानों पर आर्यनेताओं पर छिप कर घात लगाने का प्रयत्न किया गया । पर 'जाको राखे साइयां' की कहावत चरितार्थ होती रही । यादगिर, निजामाबाद और सिकन्दराबाद में दंगे हुए । हिंदुओं के मकान और दुकान जलाए गए । सैकड़ों हिन्दू शरणार्थी होकर रियासत छोड़ गए । इन दंगा-पीड़ित बन्धुओं के भोजन-वस्त्र-दवाई के लिए और नाना प्रकार के भ्रष्टाचार लगाकर पकड़े गए हिन्दुओं की कानूनी सहायता के लिए आर्य समाज के स्वयंसेवक जुट गए ।

तब हैदराबाद की स्टेट कांग्रेस भी चैती । उसने निजाम की विनाशकारी नीति का अन्त करने के लिए राज्य की जनता को संगठित करने का बीड़ा उठाया ताकि हैदराबाद में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित कर उसे भारतीय संघ का अंग बनाया जा सके । आर्य समाज ने पूरी शक्ति से स्टेट कांग्रेस का साथ दिया । 15 अगस्त, 47 को ही स्टेट कांग्रेस के तथा आर्य समाज के वरिष्ठ नेता गिरफ्तार कर जेल भेज दिए गए ।

अब ज्वालामुखी से लावा बह निकला । 4 दिसम्बर सन् 1947 को किंगकोठी रोड के मोड़ पर शाम के पौने पांच बजे नारायणराव पवार ने निजाम की मोटर पर बम फेंका । पर तेज चलती मोटर पर निशाना चूक गया । मोटर का पिछला हिस्सा और सड़क पर खड़े तीन अन्य व्यक्ति आहत हो गए । निजाम बच गया । बम फेंकने के लिए तीन युवक तैनात किए गए थे । मोटर आगे बढ़ती तो अगले नाकों पर तैनात दोनों युवक भी अपना काम करते । पर निजाम वहीं से वापिस लौट पड़ा ।

हालत इतनी बिगड़ जाने पर भी जब भारत सरकार की समाधि भंग नहीं हुई, तो हैदराबाद के सुप्रसिद्ध आर्य नेता भाई बंसीलाल जी भारत के गृहमन्त्री लौह-पुरुष सरदार बल्लभभाई पटेल से मिलने दिल्ली गए। गृहमन्त्री को उन्होंने सारी स्थिति बताई और कहा कि हजारों हिन्दू रियासत छोड़कर चले गए हैं। अब भी भारत सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया तो जनता को स्वयं आत्मरक्षा के लिए कोई कठोर पग उठाना पड़ेगा। पूना में तब तक हैदराबाद से भागकर आए शरणार्थियों के लिए दो शिविर खोले जा चुके थे, जिनकी देखभाल आर्य समाज ही कर रहा था। बाद में हैदराबाद स्टेट कांग्रेस ने भी इन शिविरों की व्यवस्था में उचित सहयोग दिया।

अन्त में शेषराव बाघमारे जैसे समर्थ आर्य नेता भी रियासत से निकल कर सीमावर्ती प्रदेशों में चले गए और वहाँ शिविरों के माध्यम से ही जन-मुक्ति सेना तैयार करने लगे। मरता क्या न करता वाली स्थिति थी। कई स्थानों पर रजाकारों के साथ गोलियों का आदान-प्रदान भी हुआ। 'माने गाँव' के लोगों ने जनता सरकार बनाकर तिरंगा झंडा लहरा दिया और सरकारी कारिन्दों ने जो 5 हजार बोरी अनाज इकट्ठा कर रखा था, वह सारा का सारा अनाज जनता में बाँट दिया। इस गाँव में तीन मास तक जनता का राज्य रहा। लोगों द्वारा स्वेच्छापूर्वक दिए गए धन तथा अन्य सामान से जन-सेना की शक्ति बढ़ती गई। कई जगह उसने रजाकारों के दांत खट्टे किए। भारत सरकार द्वारा पुलिस कार्रवाई शुरू किए जाने से पहले ही इस जनसेना ने निजाम राज्य की सीमाओं के दस मील अन्दर तक के ग्रामों को स्वतंत्र करा लिया था।

जो लोग रियासत से बाहर चले गए उनकी जान तो बेशक बच गई, पर इससे रियासत के अन्दर बचे आर्यनेताओं की जान और संकट में पड़ गई। उस समय रियासत में टिके रहना भी कम बहादुरी नहीं थी। तभी रियासत के वकीलों ने अपने प्रधान बैरिस्टर विनायक राव के नेतृत्व में निजाम की सब अदालतों के पूर्ण बहिष्कार का निर्णय किया। निजाम सरकार इससे चौखला उठी और उसने विनायक राव विद्यालंकार और नरसिंह राव एडवोकेट (भारत के वर्तमान जनसंसाधन मन्त्री) तथा अन्य वरिष्ठ वकीलों को गिरफ्तार कर लिया।

सन् 47-48 में हैदराबाद के युवकों ने सब प्रकार के अत्याचार सहते हुए भी जिस साहस का परिचय दिया था, वह आर्यसमाज की ही देन थी। जब श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी भारत सरकार के एजेंट जनरल के रूप में हैदराबाद में नियुक्त हुए तब निजाम सरकार, रजाकारों और मजलिस के गुप्त निर्णयों की रिपोर्ट श्री मुंशी तक पहुँचाने का साहसिक कार्य भी आर्य युवकों ने ही किया। इस काम का जिम्मा अपनी जान जोखिम में डालकर भी जिस व्यक्ति ने लिया वह वही हैदराबाद सत्याग्रह का हीरो था—रामचन्द्र राव वन्देमातरम्।

पुलिस कार्रवाई

अन्त में, इधर 13 सितम्बर, 1948 को भारत के सैनिकों ने मेजर-जनरल जे० एन० चौधरी के नेतृत्व में निजाम की रियासत पर दो छोरों से 'पुलिस ऐक्शन' प्रारंभ

किया, उधर उसी दिन पाकिस्तान के निर्माता कायदे आजम मुहम्मदअली जिन्ना के प्राणपखेरू उड़ गए। मुख्य सेना खोलापुर-हैदराबाद मार्ग से चली और छोटी सेना बेजवाड़ा-हैदराबाद मार्ग से। कई स्थानों पर सैनिकों के आगे आगे आर्यवीर रास्ता दिखाते हुए चले। जो काम बंगलादेश के युद्ध के समय मुक्तिवाहिनी ने किया, बहुत कुछ वही काम इस पुलिस ऐक्शन में आर्यसमाज के स्वयंसेवकों ने किया। 13 और 14 सितम्बर को भारतीय सेना का हल्का प्रतिरोध हुआ, तीसरे दिन विरोध शान्त हो गया। रजाकारों के 800 सैनिक मारे गए। 17 सितम्बर को हैदराबाद के प्रधान सेनापति एल० इद्रुस ने आत्मसमर्पण कर दिया। हैदराबाद की सेना को निश्चस्त्र कर दिया गया। लायक अली तथा निजाम के मंत्रिमंडल को अपने अपने घरों में नजर बंद कर दिया गया। 18 सितम्बर को मेजर जनरल चौधरी हैदराबाद के प्रथम सैनिक गवर्नर बने। 19 सितम्बर को कासिम रिजवी को गिरफ्तार किया गया। 23 सितंबर को निजाम ने सुरक्षा परिषद् को तार भेज कर अपनी शिकायत वापिस ले ली। निजाम का दीवान लायक अली नजरबन्दी की हालत में ही किसी तरह भागकर पाकिस्तान पहुंचने में सफल हो गया।

फरवरी 1949 में सरदार पटेल अपनी दक्षिण भारत की यात्रा के दौरान हैदराबाद भी आए। तब निजाम स्वयं हवाई अड्डे पर उपस्थित हुआ। उसने अपने जीवन में प्रथम और अंतिम बार हाथ जोड़ कर अत्यन्त विनम्रतापूर्वक सरदार को अभिवादन किया। इस तरह जहां उसका भारत का प्रथम खलीफा और मुलतान बनने का स्वप्न धरासायी हो गया, वहां भारत राष्ट्र के प्रतिनिधि के प्रति पूर्ण निष्ठा का परिचय देकर उसने उस विश्वासघात का भी प्रायश्चित्त कर लिया जो उसके पूर्वज निजामुलमुल्क आसफजाह ने दिल्ली तख्त के बादशाह के प्रति किया था। सन् 1724 का प्रायश्चित्त पूरे सवा दो सौ साल बाद सन् 1949 में। हैदराबाद के क्षितिज पर स्वतन्त्रता और लोकतंत्र का सूर्य चमका। आर्यसमाज का स्वप्न पूरा हुआ।

हैदराबाद की मुक्ति के बिना भारत की स्वतंत्रता अधूरी थी। और आर्य समाज के सहयोग के बिना हैदराबाद की मुक्ति की कल्पना करना कठिन था। यदि आर्य सत्याग्रह न होता, तो आर्यों में निजाम से संघर्ष का संकल्प भी उत्पन्न न होता स्वयं सरदार पटेल ने कहा— “यदि आर्यसमाज ने पहले से भूमिका तैयार न की होती तो हैदराबाद में तीन दिन में पुलिस ऐक्शन सफल नहीं हो सकता था।” इस प्रकार सन् 1939 का वह आर्य सत्याग्रह भारत के स्वतंत्रता संग्राम का एक विशिष्ट और महत्वपूर्ण अध्याय है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

फला फूला रहे या रब ! चमन मेरी उमीदों का ।

जिगर का खून दे देकर ये बूटे मैंने पाले हैं !!

• • •

॥ इति ॥

परिशिष्ट-१

अन्तिम अभियान

ध्वजारोहण—‘हैदराबाद स्टेट कांग्रेस’ के अनुसार 15 अगस्त सन् 1947 को (जबकि भारत स्वतन्त्र हुआ था और हैदराबाद में निजाम का ही राज्य था) बड़े ही धैर्य एवं साहस के साथ कल्याण और राजेश्वर के पुलिस स्टेशन, हुमनाबाद के बस-स्टेण्ड तथा सस्तापुर और दालिम के डाक-बैंगले पर तिरंगा ध्वज फहराया गया। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि दालिम के डाक-बैंगले में उस रात पुलिस के अधिकारी स्वयं उपस्थित थे, लेकिन यह कार्य गुप्त रूप से सम्पन्न किया गया। इस साहस-पूर्ण कार्य में भाग लेने वालों में नरेन्द्र निकेतन आश्रम के संचालक श्री गोपालदेव, श्री निवृत्तिराव, श्री नागोराव, श्री तरसिहराव, निरंगुड़ी आदि प्रमुख थे।

तार और पेंड काटे गये—‘बीदर और मालकी के बीच रेलवे की तार-व्यवस्था को भंग कर दिया गया और कांग्रेस के आदेशानुसार धनूरा वन और चंडका-पुर वन के सैकड़ों वृक्ष रातों-रात काट गिराये गये।

सशस्त्र क्रान्ति—हुन्नीला, गोटी, मुचलंब, मालेगाँव और काहेपुर आदि स्थानों पर रजाकारों एवं पुलिस के कर्मचारियों के साथ डटकर मुकाबिला हुआ। गोटी की लड़ाई में बीदर जिले का विख्यात रजाकार नेता हिजामुद्दीन और उसके दो साथी मारे गये। बेलूरा नामक ग्राम में भी रजाकारों का डटकर सामना किया गया। इन सारे संघर्षों में विशेषकर आश्रमवासी कार्यकर्त्ताओं का ही हाथ रहा है। इस स्वातन्त्र्य युद्ध में आश्रम के दो कर्मनिष्ठ कार्यकर्त्ता श्री वेंकटराव जी मूले मिर-खल और श्री केशवाचार्य बेलूरा शहीद हुए। इन दोनों वीरों ने सीमाक्षेत्र पर रजाकारों एवं पुलिस के साथ लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की है।

वागहरी कैंप—‘उस्मानाबाद जिला कांग्रेस’ ने सर्वप्रथम उस्मानाबाद-गुल-बर्गा-सीमा पर अवकलकोट स्टेट में वागहरी नामक गाँव में एक कैंप खोला। इसका एकमात्र उद्देश्य सशस्त्र क्रान्ति ही था। सीमा-प्रदेश में स्थित करोड़गिरी नाका को धराशायी करना और रजाकारों को मूल से समाप्त करना आदि आयोजन इस क्रान्ति के अन्तर्गत थे। इस कैंप में अलन्द, गुंजीटी, नरेन्द्र निकेतन जानापुर आदि के कार्य-कर्त्ता प्रमुख रूप से थे। इस कैंप में श्री गोपालदेव शास्त्री कल्याणी को सर्वप्रथम सर्वाधिकारी (कैप्टन) के रूप में नियुक्त किया गया। पन्द्रह-बीस दिन के भीतर ही इस कैंप ने पर्याप्त प्रगति की। इसके अनुसार चाकूर पुलिस-स्टेशन पर हमला करके वहाँ

से बहुत-से हथियार प्राप्त किये गये । इस कार्य में श्री गोविन्दराव, शाहुराव पवार आदि का पराक्रम वस्तुतः उल्लेखनीय रहा । श्री गोपालदेव को गोली लगने के कारण 'वाड़िया अस्पताल, शोलापुर' में तीन मास तक विश्राम करना पड़ा ।

चौसठ ग्राम स्वतन्त्र—अस्पताल से अवकाश प्राप्त करने के साथ ही उस्मानाबाद जिले में कांग्रेस के आदेशानुसार जो 64 ग्राम स्वतन्त्र हुए थे, उनमें प्रचार करने का उत्तरदायित्व श्री गोपालदेव जी ने अपने कंधों पर लिया ।

वांगी वारूल आदि स्थानों पर अनेक सभाओं में भाषण आदि द्वारा आपने जनजागृति उत्पन्न की । स्वतन्त्रता प्राप्त 64 ग्रामों के प्रबन्धकार्य में भी अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया । यह सारा कार्य स्वर्गीय श्री फूलचन्द जी गांधी अध्यक्ष जिला कांग्रेस कमेटी, उस्मानाबाद के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ । साथ ही इन कार्यों में निलंगा, लातूर, तुलजापुर, वाशी आदि के आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं का भी प्रमुख रूप से सहयोग रहा ।

मुस्लिम रजाकारों का प्रतिकार—हैदराबाद में निजाम और 'मजलिसे इत्तिहादुल मुसलमीन' से प्रेरणा लेकर कासिम रिजवी ने शस्त्रों से रजाकारों को लैस किया था जिससे हिन्दुओं के प्राण और उनकी इज्जत खतरे में पड़ गए थे । इस गंभीर स्थिति को अनुभव करते हुए श्री पंडित रुद्रदेव, श्री एन० देवय्या (चादर घाट) तथा नरेन्द्र जी ने कई हजार रुपये की राशि शस्त्रों के लिए एकत्र करने के निमित्त बरंगल तथा नलमुण्डा का लूफानी दौरा किया और संगृहीत शस्त्रों को ग्रामीणों में वितरित करके उन्हें रजाकारों के आक्रमण से आत्मरक्षा की प्रेरणा दी ।

परिशिष्ट-२

हैदराबाद के सत्याग्रहियों को स्वतन्त्रता सेनानी घोषित करने वाले सरकारी आदेश की प्रतिलिपि

No 8/32/84—FF (P)

Government of India/Bharat Sarkar
Ministry of Home Affairs/Grih Mantralaya.

New Delhi-110003. the 30th Sept. 85

To

Chief Secretaries of all State
Govts/U. T. Administrations,
(as per list attached).

Sub:—Grant of pension from Central Revenues to freedom fighters and their families under Swatantrata Sainik Samman Pension Scheme.

Sir,

I am directed to state that certain proposals based on the recommendations of the Non-Official Advisory Committee at the Central level have been under consideration of the Government for some time. The Government have taken the following decisions in respect of the Freedom Fighters' pension Scheme, 1972 now renamed as Swatantrata Sainik Samman Pension Scheme:—

(i) Arya Samaj Movement of 1938-39 which took place in the former Hyderabad State has been recognised as part of the freedom struggle for the purpose of Samman pension under the liberalised pension scheme effective from 1-8-80.

(ii) The quantum of monthly pension admissible to freedom fighters and the widows of the deceased freedom fighters has been raised to Rs. 500/-p. m. with effect from 1st June, 1985. The enhanced rates of pension of Rs. 500/-p. m. will also be admissible to the widows of the deceased freedom fighters. The unmarried daughters of the widows who have been sanctioned family pension under the scheme will now not be entitled for additional pension of Rs. 50/-. Separate general instructions are being issued to all the Accountants General to revise the Pension Payment Orders in Pursuance of this decision.

2. The Government have also considered the undermentioned proposals but have not accepted them for the purpose of pension under Swatantrata Sainik Samman Pension Scheme:—

(i) Award of Tamrapatras to the legal heirs of martyrs/deceased freedom fighters.

(ii) Grant of pension to such ex INA personnel (from civilian side) who are in receipt of State pension in relaxation of the existing provisions.

(iii) The question of recognition of:—

(a) Cochin Police Strike—1942—Kerala.

(b) Kerivellur Struggle—Kerala.

3. The State Governments are requested to bear in mind the above decisions of the Government while verifying the claims of applicants for Samman pension under Swatantrata Sainik Samman Pension Scheme.

Yours faithfully.

(K. N. SINGH)

Under Secy. To The Govt. of India

Copy for information to:—

1. All the Branch Officers and processing Sections of the Freedom Fighters Division.

2. DS (F.F)/PS to JS (F)/PS to Dir. (FF).

3. Cabinet Secretariat (Sh. H. R. Goel, Dy. Secy.) with reference to their letter No. 27/CM/85(1) dated 11-9-85.

(K. N. SINGH)

Under Secy. To The Govt. Of India

इस्लामी सल्तनत का स्वप्न-द्रष्टा



निजाम हैदराबाद मीर उसमान अली खान जिसके अत्याचारों के
विरुद्ध आर्यसमाज को सत्याग्रह करना पड़ा

आर्य सत्याग्रह के प्रथम सर्वाधिकारी



महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज



आर्य सत्याग्रह शक्तिर, कोलापुर के
संचालक स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी



आर्यमहासम्मेलन, कोलापुर के प्रधान
लोकनायक बापू श्री हरि अणे

द्वितीय सर्वाधिकारी



श्री चांदकरण शारदा

तृतीय सर्वाधिकारी



श्री खुसहाल चंद खुसन्द
(महात्मा आनन्द स्वामी)

पंचम सर्वाधिकारी →
चतुर्थ सर्वाधिकारी



राजगुरु श्री धरेन्द्र शास्त्री
(स्वामी ध्रुवानन्द)



श्री वेदव्रत बानप्रस्थी

षष्ठ सर्वाधिकारी



महाशय कृष्ण जी

सप्तम सर्वाधिकारी



श्री ज्ञानेन्द्र सिद्धान्त भूषण

अष्टम सर्वाधिकारी



**बैरिस्टर विनायक राव
विद्यालंकार**



**श्री कृष्णदत्त (विनायक राव जी के
सचिव), बाद में हिन्दी महाविद्यालय
के प्राचार्य और आ०प्र०सभा के मंत्री**

हैदराबाद में आर्यसमाज के प्राण



युवा हृदय 'सम्राट', अद्भुत संगठन-
कर्ता पं० नरेन्द्रजीजी बाद में स्वामी
सोमानन्द बने



हाई कोर्टके जज केशवराव कोरटकर
(विनायक राव विद्यालंकार के पिता)
हैदराबाद में आर्य समाज के प्रारं-
भिक पुरस्कर्ताओं में अग्रणी



भाई वंशोलाल जी



भाई श्यामलाल जी अमर हुतात्मा



रामचन्द्रराव बंदिमातरम् को बैठें' लगने के समय का दुर्लभ चित्र
(डॉ. प्रकाश संग्राम बायें कलाकार के सौजन्य से)



ठा० अमरसिंह जी 'जेम' के 'बेष' में
(वर्तमान अमरसिंहामीजी)
एक दुर्लभ चित्र



श्री शेषराव बाघमारे
जो लाठी से बाघ को मार डालने
के कारण 'बाघमारे' कहलाए



गुरुकुल कांगड़ी का वह पहला सत्याग्रही जत्था जिसकी आपबीती
इस पुस्तक में वर्णित है । ('सार्वदेशिक' फरवरी 1939 से)



हृत्तारमा स्वामी सध्यानन्द जी और उनकी पीठ पर लगे घाव

हैदराबाद
के निजाम
मीर उस्मान
अली
लौह पुरुष
सरदार पटेल
को
अभिवादन
करते हुए



स्वप्न भग
और
प्रायश्चित्त



लेखक : जेल से छूटने के बाद

अखिलेश वेदालंकार छात्र-जीवन से ही विद्रोही प्रकृति के रहे हैं। गुरुजनों और माता-पिता के बहुत रोकने पर भी अन्तिम वर्ष में पढ़ाई छोड़कर हैदराबाद के आर्य सत्पात्रह में शामिल हो गए। उसके बाद समाजसेवा में लग गए। देश-विभाजन के बाद पत्रकारिता में आए सन् 1979 में 'दैनिक हिन्दुस्तान' के वरिष्ठ सहायक संपादक के रूप में अवकाश ग्रहण किया। अपने राष्ट्रवादी चिंतन और उसकी सशक्त अभिव्यक्ति के लिए विख्यात हैं। कई पुस्तकें पुरस्कृत हुईं और कईयों की खासी धूम रही। हिमालय और भारत-भ्रमण की विशेष रुचि है। सम्प्रति 'आर्य जगत्' के सम्पादक हैं और जीवन के 70 बसन्त पार करके भी निरंतर समाज सेवा में रत हैं।

दि वर्ल्ड पब्लिकेशन्स

807/95, नेहरू प्लेस,

नई दिल्ली-110019